भारतीय कृषि सांख्यिकी संसद

(हिन्दी परिशिष्ट)

खंड १२] १९६० [अंक १

अनुक्रमणिका

पृ. सं.

१. कृषि सांख्यिकी संसद के तेरहवें वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर बंबई राज्य के कृषि मंत्री श्री० वी० पी० नायक द्वारा दिया गया स्वागत भाषण ... iii

२. कृषि सांख्यिकी संसद के तेरहवें वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर बंबई राज्य के मुख्य मंत्री श्री० वाई० बी० चावन द्वारा दिया गया उद्घाटन भाषण ... vi

३. पूना में ८ जनवरी १९६० को हुए भारतीय कृषि सांख्यिकी संसद के १३ वें वार्षिक सम्मेलन के अवसर पर दिया गया प्रोफेसर डी० आर० गाडगिल का प्राद्यौगिक अभिभाषण xi

४. वर्तुल समनुविधान xxxiv
एम० एन० दास

५. आवर्धित संमितिक तथा असंमितिक हत समनुविधान ... xxxv
एस० एस० निरुला

६. दो या अधिक पॉयसन समग्रों के मिश्रण से लिये गये अभिवेचित अधीक्षणों द्वारा प्राचलों का आगणन ... xxxv
नौनिहाल सिंह

७. लैटिन समायत का स्वतंत्र विभाजन ($द^2 - द, द$) ... xxxvi
पी० एन० भार्गव

अनुवादक—**तारकेश्वर प्रसाद**

कृषि सांख्यिकी संसद के तेरहवें वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर बंबई राज्य के कृषि मंत्री श्री० वी० पी० नायक द्वारा दिया गया स्वागत भाषण।

श्री० यशवंत राव चौहान, प्रत्यायुक्तों तथा मित्रों,

भारतीय कृषि सांख्यिकी संसद के १३ वें वार्षिक सम्मेलन के कार्य्यक्रम में भाग लेने के लिये उपस्थित पूना के ऐतिहासिक नगर में आपका हार्दिक स्वागत करते हुए मुझे अत्यधिक प्रसन्नता हो रही है। संसद के दो प्रतिष्ठित सदस्य—डा० पी० वी० सुखात्मे तथा डा० वी० जी० पान्से—जो यहाँ उपस्थित हैं बंबई राज्य के निवासी हैं। दोनों ही असाधारण कृषि सांख्यिक हैं। डा० सुखात्मे रोम में स्थित संयुक्त राष्ट्र के खाद्य तथा कृषि संस्था में सांख्यिकी विभाग के संचालक है और डा० पान्से नई दिल्ली के भारतीय कृषि अनुसंधान सांख्यिकी संस्था के प्रधान हैं। हम बंबई निवासियों को उन पर स्वाभाविकतः गर्व है।

राज्य के प्रत्येक कार्य्यक्रम में सांख्यिकी की अनिवार्यता दिनों दिन बढ़ती ही जा रही है। कलकत्ता की भारतीय सांख्यिकी संस्था योजना आयोग से घनिष्ठ रूप से संबंधित है। इस संस्था के कार्य्यक्रम इतने महत्वपूर्ण माने गये हैं कि, जैसा आप सभी जानते हैं, केवल गत मास ही भारतीय लोक सभा ने एक बिल की स्वीकृति दी जिसके अनुसार इस संस्था को राष्ट्रीय संस्था का स्थान मिला। इसी प्रकार कृषि सांख्यिकी क्षेत्र में दिल्ली के भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का भूतपूर्व सांख्यिकी विभाग अब एक कृषि अनुसंधान सांख्यिकी संस्था में परिवर्तित कर दिया गया है। कृषि सांख्यिकी क्षेत्र में इसके अत्यन्त उपयोगी कार्य्यों के अनुमोदन के रूप में ही ऐसा किया गया है।

यह जानकर बड़ी प्रसन्नता होती है कि संसद ने अपने अत्यन्त उपयोगी जीवन का १३ वाँ वर्ष पूरा कर लिया है। आपके कार्य्य इतने महत्वपूर्ण समझे गये हैं कि भारतीय संयुक्त राज्य के राष्ट्रपति, डा० राजेन्द्र प्रसाद, स्वयं संसद के प्रारंभ से ही इसके अध्यक्ष हैं और अभी भी अपना सहयोग तथा पथप्रदर्शन देते रहते हैं।

यह जानकर मुझे खुशी होती है कि आपके संसद का वार्षिक सम्मेलन दूसरी बार पूना में हो रहा है। गत सम्मेलन जो १९४९ में हुआ था, इस

संसद के लिये वार्षिक सम्मेलन अपने मुख्यालय दिल्ली से बाहर रखने का पहला अवसर था। पूना का यह सम्मेलन भी पहला अवसर है जब संसद अपना वार्षिक अधिवेशन उसी स्थान पर दूसरी बार कर रहा है। इसे मैं पूना के आध्यात्मिक वातावरण और बंबई राज्य में कृषि सांख्यिकी के सुधार में तीव्र प्रगति की प्रशंसा समझता हूँ।

तत्काल, इस राज्य में अनेक सरकारी तथा अन्य निजी संस्थाएं हैं जिनमें विशिष्ट सांख्यिकी कार्य्यक्रमों के लिये अनेक विभाग हैं।

कृषि अर्थ व्यवस्था के अध्ययन के लिये पूना के राजनीति तथा अर्थशास्त्र के गोखले संस्था के महत्वपूर्ण प्रतिदानों से आपको परिचय कराने की आवश्यकता नहीं। कुछ ही दिन हुई इस संस्था ने गांवों में अर्थव्यवस्था के परिवर्तनों पर एक अधीक्षण किया था। पूर्वी खान्देश जिला में ग्रामीण ऋण अधीक्षण का पुनः अध्ययन अभी इसने समाप्त किया है। प्रक्षेत्र लेखा व्यवस्था की विधि और व्यवहार के अध्ययन में भी इसने अपनी रुचि दिखाई है। अभी-अभी, अहमदनगर जिला के दो ताल्लूकों में बड़े बृहत् रीति से बांध बनाने के आर्थिक लाभों का मूल्यांकन भी इसने किया है। इसीलिये यह उचित ही है कि इस अधिवेशन का प्राद्यौगिक भाषण इस संस्था के प्रतिष्ठित संचालक प्रो० धनंजय राव गाडगिल द्वारा दिया गया।

पूना में स्थित केन्द्रीय जल-विद्युत और अनुसंधान शाला ने विभिन्न पानी रोकने के क्षेत्रों में वर्षा और बहाव के आंकड़ों से उस स्थान की सिंचाई की संभावनाओं का संबंध स्थापित करने के लिये अध्ययन किया है।

भारतीय नक्षत्र सचिवालय के नक्षत्र विभाग ने अनेक वर्षों से सस्य की प्रगति का विश्लेषण और सस्य उत्पादनों के पुर्वानुमान के दृष्टिकोण से सस्य-मौसम संबंधित आंकड़े एकत्रित किये हैं।

पूना विश्वविद्यालय का सांख्यिकी विभाग सांख्यिकी के सैद्धान्तिक पक्ष पर विशेष ध्यान दे रहा है।

बंबई सरकार के अर्थ विभाग में हमारी अर्थव्यवस्था तथा सांख्यिकी संस्था है जो प्रधानतः विभिन्न विभागों के सांख्यिकी कार्य्यों को सुव्यवस्थित करने और आर्थिक तथा अन्य नीतियों के संबंध में सरकार द्वारा वांछित ढंग से संग्रहण करने का उत्तरदायी है। इसके अतिरिक्त यह संस्था पशुओं की गणना, समाजार्थिक तथा अन्य, अधीक्षण भी करता है।

राज्य के लकड़ी साधनों और छोटे वन उत्पादनों के आगणन के लिये आंकड़े एकत्रित करने के लिये वन विभाग न्यादर्श अधीक्षण करते रहे हैं।

इसी प्रकार मत्स्य विभाग में न्यादर्श विधियों द्वारा समुद्री मछलियों की मात्रा के आगणन का प्रारंभ कर दिया गया है।

राज्य के कृषि विभाग में एक सम्पूर्ण और सुव्यवस्थित सांख्यिकी अंग हैं जो न सांख्यिकी विधियों, कृषि के विभिन्न क्षेत्रों में सांख्यिकी विधियों के प्रयोग और उसके क्षेत्र, विश्वसनीयता, समयानुकूलिता, विषय और विस्तार को बढ़ाकर वर्तमान कृषि सांख्यिकी के विकास में संलग्न है।

यद्यपि गत कुछ वर्षों में कृषि सांख्यिकी के क्षेत्र में सराहनीय प्रगति हुई है, सरकार पूर्णतः अवगत है कि अभी पंचवर्षीय योजनाओं के प्रतिदिन बढ़ती मांग की पूर्ति करने के लिये इस क्षेत्र में यथेष्ठ काम शेष रहता है। इसीलिये न केवल कृषि विभाग के सांख्यिकी अंग को और अधिक विस्तृत करने की आवश्यकता है वरन् पशुपालन विभाग को शक्तिशाली करने के लिये एक सांख्यिकी अंग की भी जरूरत है क्योंकि अभी पशुओं और उनके उत्पादनों के आंकड़ों की बहुत कमी है।

मैं देखता हूँ कि इन तीन दिनों के लिये आपका कार्य्यक्रम यद्यपि रुचिकर है, फिर भी कठिन है। दो गोष्टियां, "कृषि से प्राप्त राष्ट्रीय आय गणना की समस्या" और दूसरी "चीन में कृषि विधियाँ" और अन्य लोकप्रिय भाषण जैसे 'प्रक्षेत्र सहकारिता' विषय में रुचि रखने वालों के लिये है।

मैं आशा करता हूँ आपके कार्य कृषि सांख्यिकी के विकास में सरकार के लिये बहुत सहायक सिद्ध होंगे।

स्थानीय स्वागत समिति ने महत्वपूर्ण स्थानीय संस्थाओं को देखने का और एक सांस्कृतिक कार्य्यक्रम का आयोजन किया है। समस्त दिन के श्रान्त कर देने वाले कार्य्यक्रमों के बाद, मुझे विश्वास है, आप इसे संतोषजनक परिवर्तन पायेंगे।

आपके कार्य्यक्रमों की मैं सफलता चाहता हूँ और आशा करता हूँ आपका पूना का प्रवास कमसे कम इतना रुचिकर हो सकेगा जो आपको फिर यहाँ खींच लाये।

एक बार फिर आपका मैं हार्दिक स्वागत करता हूँ और मुख्यमंत्री से अनुरोध करता हूँ कि वे इस अधिवेशन का उद्घाटन करें।

कृषि सांख्यिकी संसद के तेरहवें वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर बंबई राज्य के मुख्य मंत्री श्री० वाई० बी० चावन द्वारा दिया गया उद्घाटन भाषण।

श्री० वसंतराव नायक, प्रोफेसर गाडगिल, प्रत्यायुक्त गण, भद्र महिलाओं और सज्जनों,

प्रतिष्ठित वैज्ञानिकों से पूर्ण आपके संसद जैसे प्रभावशाली संस्था के वार्षिक सम्मेलन के कार्य्यक्रम का उद्घाटन करने के लिये निमंत्रित होना वास्तव में सम्मान की बात है।

गत १९५२ में जानपद प्रदाय के मंत्री के रूप में मैं खाद्य उत्पादन उसके आयात-नियात तथा वितरण, विपण्य अतिरेक, खपत इत्यादि के विषय में यथार्थ सूचना की कमी से अवगत हुआ। मुख्य मंत्री होने के कारण, द्वितीय पंचवर्षीय योजना में राज्य के कृषि विकास के कार्य्यक्रम को कार्य्यान्वित करने के लिये नियंत्रण तथा संचालन करते हुए मैं फिर कृषि के क्षेत्र में आधारभूत तथा विश्वसनीय सांख्यिकी आंकड़ों की आवश्यकता का अच्छी तरह अनुभव करता हूँ। इसीलिये जब स्थानीय स्वागत समिति के प्रधान श्री० एस० पी० मोहिते ने मुझसे इस सम्मेलन का उद्घाटन करने के लिये निमंत्रित किया तब मैंने तत्काल ही इसे स्वीकार कर लिया। मुझे इसका अवसर देने के लिये मैं संसद का आभारी हूँ।

दस वर्षों में दूसरी बार पूना में संसद का वार्षिक सम्मेलन करने के निर्वाचन के लिने इसकी संचालिका समिति के निश्चय की मैं प्रशंसा करता हूँ। मुझे यह देखकर खुशी होती है कि इस दशाब्दि में इस राज्य के कृषि सांख्यिकी क्षेत्र में प्रशंसनीय प्रगति हुई है।

आर्थिक तथा सांख्यिकी विभाग ने क्षेत्र-स्वामित्व, गांवों तथा शहरों में उपभोक्ता व्यय, वृत्तिहीनता तथा आंशिक वृत्ति और कृषि उपार्जन पर आंकड़े संकलित किये हैं। दुष्काल के कारण गांवों के समाजार्थिक अवस्थाओं तथा सिचाई के प्रबंधों से उत्पन्न लाभों का इसने महत्वपूर्ण अध्ययन किया है।

क्षेत्र लेखा विभाग ने राज्य के प्रायः समस्त भौगोलिक क्षेत्र का भूकर-माप किया है। इसके फलस्वरूप क्षेत्र उपयोगिता के अधिक विश्वसनीय सांख्यिकी उपलब्ध हुए हैं।

कृषि विभाग में खाद्य तथा अखाद्य सस्यों के, जो राज्य में सस्य-क्षेत्र का प्रायः ८० प्रतिशत है, उत्पादन के वास्तविक तथा विश्वसनीय आगणक प्राप्य हैं।

सरल तथा व्यावहारिक अधीक्षण विधि के अभाव के कारण फलों तथा शाकों (सब्जियों) के उत्पादन आगणक संभव न हो सके। इस विभाग ने अब एक सफल विधि निकाला है जिसके द्वारा, पहली बार, नारंगी, केला, अंगूर तथा प्याज के उत्पादन और क्षेत्रफल का यथार्थ आगणक मिल सका है। पशुओं की संख्या के आगणन के लिये भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा व्युत्पादित अधीक्षण विधि को समस्त राज्य में सफलतापूर्वक प्रयोग करने में बंबई राज्य भारत में सर्वप्रथम रहा है। अन्तरगणना वर्षों में भी, संमण्डल तथा राज्य में, पशु संख्या के दक्ष आगणक प्राप्त करना अब संभव हो गया है।

अभी हाल में प्रारंभ किये गये खरीफ तथा रबी आन्दोलन और 'अधिक अन्न उपजाओं' के अनेक प्रबंधों पर सरकार बहुत अधिक धन व्यय करती रही है। इसीलिये ऐसे प्रबंधों तथा आन्दोलनों के निष्कर्षों का मूल्यांकन आवश्यक हो गया है। उन्नत बीजों उर्वरकों तथा कुंए की सिंचाई के प्रयोग संबंधित मूल्यांकन राज्य के कुछ भागों में किया जा चुका है। धान की खेती के लिये उन्नत प्रबंधों के गहन अधीक्षण से यह ज्ञात हुआ कि दस मन प्रति एकड़, जो वर्तमान माध्य उत्पादन के ५० प्रतिशत से भी अधिक है, अतिरिक्त उत्पादन संभव है। इसी प्रकार. बांध वाले क्षेत्रों के न्यादर्श अधीक्षण से यह देखा गया कि रबी ज्वार तथा बजरी के उत्पादन में केवल बांध डालने के कारण उत्पादन में २५ प्रतिशत वृद्धि संभव हुआ। ऐसे विश्वस्त आंकड़ों से जनता तथा सरकार को एक नया अनुभव मिलता है।

अनुसंधान केन्द्रों तथा किसान के खेतों पर किये जाने वाले संपरीक्षाओं तथा अन्वीक्षाओं के लिये समयकालीन सांख्यिकी विधियाँ प्रयुक्त हो रही हैं। इनसे प्राप्त आंकड़ों पर आधारित निर्णयात्मक, व्यावहारिक तथा आर्थिक अभिस्तावनें किसानों के कृषि सुधार के लिये दिये जा सकते हैं।

जैसा कि सभी कृषि सांख्यिकी जानते हैं, सुतथ्य आंकड़ों के संग्रहण में प्राथमिक प्रतिवेदनाभिकरण सब से क्षीण कड़ी है। भारत सरकार के खाद्य तथा कृषि मंत्रालय के आर्थिक तथा सांख्यिकी संचालिका के संकेत पर आधार-भूत तथा समयकालीन कृषि सांख्यिकी के संग्रहण तथा प्रतिवेदन की शुद्ध विधियों में १९५५–१९५८ की अवधि में, १२,००० से अधिक प्राथमिक प्रतिवेदकों को गहन शिक्षा दी गयी थी। इसके फलस्वरूप प्रतिवेदन विधियों में संतोषजनक सुधार हुआ है।

इस प्रकार आप देखेंगे कि गत दशाब्दि में बंबई राज्य कृषि सांख्यिकी के क्षेत्र में अग्रसर होने तथा इस गति का इतने उत्साह से अनुसरण करने के कारण गर्व कर सकता है।

यद्यपि ये निष्पत्तियों उत्साह जनक हैं फिर भी अभी बहुत कुछ करना शेष है और अनेक त्रूटियों की पूर्ति करनी है। ऐसे अवसर पर उनमें से कुछ एक की चर्चा करना असंगत न होगा।

उन्नत उत्पादन के लिये योजना बनाने के लिये हमें यह जानना चाहिये कि उर्वरक, सिंचाई, अच्छे बीजों के प्रयोग तथा उन्नत कृषि विधियों, जैसे उन्नत प्रबंधों के प्रयोग से वास्तविक खेतों में उत्पादन की कितनी वृद्धि होगी। अनुभव बताता है कि, इस काम के लिये, अनुसंधान केन्द्रों से संग्रहित आंकड़ों पर पूर्ण विश्वास नहीं किया जा सकता क्योंकि इन केन्द्रों के खेतों की अवस्था किसान के खेतों से प्रायः भिन्न होती हैं और साधारणतः ये अनुसंधान केन्द्र उस भूखण्ड के, जिसके लिये उन्नत विधियों की अभिस्तावना की जा रही है, मृदा-जलवायु की अवस्थाओं का वास्तविक प्रतिनिधित्व नहीं करते। इसीलिये यह आवश्यक है कि इन प्रबंधों के साथ स्वयं किसान के उन खेतों पर अन्वीक्षायें की जायें जो उस भूखण्ड का प्रतिनिधित्व कर सके। ये अन्वीक्षायें यदि उनकी रूपरेखा सरल हुई तब वे दृष्टि-निरूपण तथा उन्नत कृषि विधियों के विज्ञापन केन्द्र भी बन जा सकते हैं। वास्तव में, १९५५ में, आपके संसद के प्रतिष्ठित अध्यक्ष डा० राजेन्द्र प्रसाद ने अपने अनुष्ठानिक भाषण में इन अन्वीक्षाओं के आवश्यकता की चर्चा की थी। आज मैं यह जानकर प्रसन्न हूँ कि अगले वर्ष बंबई राज्य का कृषि विभाग एक बहुत ही महत्वाकांक्षी तथा व्यापक योजना, जिसके अन्तर्गत किसान के खेतों में अन्वीक्षायें प्रतिवर्ष की जायेंगी, बना रही है। मुझे कोई संदेह नहीं कि इन अन्वीक्षाओं के निष्कर्ष विभिन्न उन्नत विधियों की उपयोगिता के विषय में किसानों में विश्वास उत्पन्न कर सकेंगे।

कृषि के प्राथमिक आर्थिक इकाई किसानों के धृतक्षेत्र हैं। जबतक हम भूधारण प्रकारों, खण्डन के विस्तार, कृषि की विधियाँ इत्यादि से बने सांख्यिकी को संकार्य धृतिक्षेत्र से संबंधित नहीं करते तबतक अपने कृषि की स्थायी उन्नति की उपयुक्त योजना हम नहीं बना सकते। मुझे खुशी है कि १९६०-६१ में भारत सरकार एक कृषि गणना करने का विचार कर रही है जो देश की ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था की महत्वपूर्ण बातों को स्पष्ट रूप से प्रकट करेगी।

दूसरी समस्या जिस पर शीघ्र ध्यान देनेकी आवश्यकता है वह है सस्यों के कृष्यकरण का मूल्य। यह सूचना आवश्यक है यदि मूल्य स्थिर करने या सस्यों के लिये आर्थिक सहायता देने तथा उत्पादकों और ग्राहकों दोनों के न्यायसंगत हितों को सुरक्षित रखने के लिये सरकार को प्रशासनीय प्रबंध प्रारंभ करने हैं। यह जानकर मुझे संतोष हुआ है कि गन्ना के उत्पादन मूल्य पर विश्वसनीय आंकड़े प्राप्त करने के लिये बनाया गया एक न्यादर्श अधीक्षण अभी-अभी पूर्ण हुआ है और कपास तथा अन्य संबंधित सस्यों के लिये इसी-प्रकार के अधीक्षण इस राज्य में चल रहे हैं।

सस्य उत्पादनों के विक्रय होनेवाले अतिरेकों से संबंधित वैज्ञानिक रीति से संग्रहित आंकड़ों की कमी है, जिस अभाव के कारण राज्य विनिमय संबंधित प्रशासनीय कार्य्य प्रायः असंभव से होते हैं।

किसान के स्वामित्व में छोटे धृतक्षेत्र या बड़े किसानों या सहकारी संस्थाओं के बड़े क्षेत्र--इनमें से किस इकाई का उत्पादन समान अवस्थाओं में अधिक होता है इस विषय पर एक मत नहीं है। उपयुक्त और सुचारु रूप से किये गये अधीक्षण ही उत्तर के लिये आवश्यक आंकड़े प्रस्तुत कर सकते हैं।

यह कहा जाता है कि बंबई राज्य में ३५ लाख एकड़ कृष्य बंजर भूमि है। एक जिला में किये गये हाल के अधीक्षण से पता चला है कि इस जिला में कृष्य बंजर बताये गये भूमि का ८० प्रतिशत व्यावहारिक दृष्टि से कृषि के लिये अनुपयुक्त था। यह बताता है कि बृहत् विकास योजनाओं के निर्माण से पूर्व सुतथ्य आंकड़ों की कितनी आवश्यकता है।

इसके अतिरिक्त हम अभी भी कीड़ों और बीमारियों के प्रकोप की मात्रा उनके द्वारा की गयी हानियों और उनके निवारण के मूल्य को अंकित नहीं कर सकते।

उपरोक्त अधिकांश दृष्टान्तों में यह प्रतीत होता है कि वास्तविक कठिनाई या तो न्यादर्श विधि की कमी है या, जब कोई प्राप्य है, तब उसे उन बदलते हुए अवस्थाओं के लिये उपयुक्त बनाने के लिये, जिसमें आंकड़े संग्रहित करने हैं, परिवर्तन की आवश्यकता है। आपके संसद पर यह प्रक्रान्त होता है कि आप इन समस्याओं पर विचार करें और उनका समाधान दें। ये अन्तराल शीघ्र भरने चाहियें क्योंकि बहुत अंशों में, सुतथ्य सांख्यिकी आंकड़ों पर ही हमारी योजनाओं के लक्ष्यों की वास्तविकता निर्भर करती है।

कभी कभी सरकार को नीतियों के निर्माण में तुरन्त निर्णय करना पड़ता है जो पूर्णरूप से ठीक नहीं भी हो सकते हैं। इसीलिये शान्तिपूर्वक और निष्पक्ष भाव से विचारकर अपने विमर्शित तथा रचनात्मक प्रस्तावों को सरकार के सामने रखने के लिये आपके जैसे स्वतंत्र संस्थाओं के ऊपर बड़ा उत्तरदायित्व है। यदि आपके जैसी स्वतंत्र संस्था अधिक अन्न उपजाओं कार्य्यक्रम, खरीफ तथा रबी आन्दोलन जैसे विभिन्न कृषि प्रबंधों के निष्पादनों और राष्ट्रीय विस्तार क्षेत्रों के कार्यों की प्रगति का समय-समय पर मूल्यांकन करती रहे तब यह जनता में सरकारी प्रबंधों की दक्षता के संबंध में विश्वास उत्पन्न करने में यथेष्ट सहायता करेगा और जनता को पंचवर्षीय योजनाओं के परिपालन में उत्साहपूर्ण सहयोग की प्रेरणा देगा।

अन्त में आपके संसद का एक और महत्वपूर्ण कार्य है जनता को शुद्ध आंकड़ों के और उन सांख्यिकी विधियों के जिनसे ये आंकड़े प्राप्त होते हैं उनके मूल्य को समझने की शिक्षा देना। सांख्यिकी विषयों पर गोष्ठियां और वक्तृतायें आयोजित कर तथा अपनी पत्रिका के लेखों के सारांशों का हिन्दी रूपान्तर प्रकाशित कर आपके संसद ने इस दिशा में पथप्रदर्शन का कार्य्य किया है। मेरे विचार से अब दूसरा कदम होगा उन लोकप्रिय सांख्यिकी साहित्य को जो साधारण व्यक्ति तथा शासक दोनों को रुचिकर हो सके उन्हें देश के प्रधान भाषाओं में प्रकाशित करना। इस काम में आपको सतर्क रहना चाहिये कि जनता को कल्पना या शासक की प्रशंसा प्राप्त करने के लिये आप सांख्यिकी को अति सरल करने की लालच में न पड़ जायें। यह स्मरण रखना लाभदायक है कि सांख्यिकी स्वयं लक्ष्य नहीं है वरन् वह लक्ष्य प्राप्त करने का माध्यम मात्र है। इसका दुरुपयोग उस कार्य्यक्रम को ही नष्ट कर डालेगा जिसके निर्माण की इससे आशा की जाती है।

एक शासक के दृष्टिकोण से मैंने तत्काल के आवश्यकताओं की चर्चा की। मुझे कोई संदेह नहीं कि आपकी संस्था अपने उत्तरदायित्व को समझती है क्योंकि यह इसके अतीत की लेखाओं से और इस अधिवेशन के कार्य्यक्रम से स्पष्ट है।

अब मैं आपके संसद के १३ वें वार्षिक अधिवेशन का उद्घाटन करता हूँ और आपके कार्य्यक्रमों के सफलता की कामना करता हूँ। मुझे विश्वास है कि ये देश के कृषि की समृद्धि तथा व्यक्ति और समाज के लिये कृषि सांख्यिकी के महत्व की ओर जनता का ध्यान आकर्षित करने के लिये सरकार की सहायता करेंगे।

पूना में ८ जनवरी १९६० को हुए भारतीय कृषि सांख्यिकी संसद के १३ वें वार्षिक सम्मेलन के अवसर पर दिया गया प्रोफेसर डी० आर० गाडगिल का प्राद्यौगिक अभिभाषण।

"भारत में कृषि विकास के लिये संयोजन"

भारतीय कृषि सांख्यिकी संसद के इस तेरहवें अधिवेशन के उद्घाटन सम्मेलन के अवसर पर प्राद्यौगिक भाषण देने के लिये निमंत्रण पाकर मैं संसद का अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। यद्यपि इस सम्मान का मैं पूर्णरूप से आदर करता हूं फिर भी मुझे इतना स्वीकार करने की स्वतंत्रता तो है ही कि मैं अभी भी अत्यधिक हतबुद्धि-सा हो रहा हूँ। इसका कारण है आपके इस कार्य्यभार को स्वीकार कर लेने की मेरी उपयुक्तता और इसे सफलता पूर्वक सम्पूर्ण करने की मेरी क्षमता में मेरा गंभीर संदेह। किसी सांख्यिकी मंडल के सम्मुख दिये हुए एक प्राद्यौगिक भाषण को सांख्यिकी विधियों के ज्ञान पर, जिसपर मेरा कोई अधिकार नहीं, आधारित होना चाहिये। इस असमर्थता के उपरान्त भी इस काम को स्वीकार कर लेने का एकमात्र कारण मैं आपके संसद के सम्मान्य सचिव की चिरलग्नता को ही बता सकता हूँ।

इस भाषण के विषय में विचार करते ही मुझे एक प्रारंभिक कठिनाई का सामना करना पड़ा। वह था एक विषय ढूँढ़ निकालना जिसके संबंध में मैं कुछ काम की बातें कर सकूँ और जो संसद के सदस्यों को भी रुचिकर लग सके। जब मैंने उनकी ही राय पूछी तब आपके सम्मान्य सचिव ने कृषि विकास के लिये संयोजन विषय पर बोलने का प्रस्ताव देकर मुझे इस उभयापत्ति से बचा लिया। उनके प्रस्ताव को मैंने स्वीकार कर लिया। इस विषय का संव्यवहार निश्चय ही मैं उसी दृष्टिकोण से करूँगा जिससे मैं परिचित हूँ और जिन प्रविधियों के संबंध में मुझे शिक्षा मिल चुकी है। मैं केवल इतनी आशा कर सकता हूँ कि इस भाषण में कुछ ऐसी सामग्रियां मिल सकेंगी जो यद्यपि कृषि सांख्यिकों के लिये प्राद्यौगिक नहीं तो साधारण रुचि के ही हो सकेंगे।

भारत में कृषि संयोजन की वर्तमान अवस्था की संक्षिप्त समीक्षा के साथ मैं प्रारंभ करूँगा। मेरी धारण है कि आज इस देश में जिसे वास्तव में संयोजन कह सकते हैं वैसा विशेष कुछ नहीं हो रहा है; और कृषि में तो अन्य अनेक आर्थिक कार्य्यक्रमों से भी कम। मैं तो यह विचार रखता हूँ कि संयोजित

द्रुत आर्थिक विकास के प्रयत्न में किसी भी मात्रा में सफलता प्राप्त करने के लिये कृषि क्षेत्र में भी संयोजना के लिये यथाशक्ति प्रयास अवश्य होनी चाहिये। भारतीय कृषि में संयोजन की वर्तमान अनुपस्थिति से संबंधित मेरे कथनों का गह् अर्थ नहीं कि कृषि विकास के लिये विभिन्न दिशाओं में अभी प्रयत्न नहीं किये जा रहे हैं या ऐसे अनेक प्रयासों को छोटी या बड़ी सफलता नहीं मिलती रही है। मैं केवल सामान्य विकासी प्रयत्न और विशिष्ट योजना कार्य्यक्रम के बीच यत्नपूर्वक भेद करना आवश्यक समझता हूँ।

कृषि के लिये एक कार्य्यक्रम नियत करने की भावना बहुत पुरानी है और कुछ अंशों में तो १९ वीं शताब्दि के अन्तिम चौथाई में हुए दुर्भिक्षों के समय तक पहुँच जाती है। इस वर्तमान रूप में अधिकांश विकास कार्य्यक्रम प्रधानतः महायुद्धों की अन्तरावधि में द्वैधशासन के परिणाम स्वरूप आये। उनके उद्भव के महत्वपूर्ण स्मृतिचिन्ह के लिये हम विशेष रूप से 'कृषि विषय पर राजकीय आयोग' के स्मारकीय विवरण को देख सकते हैं। दूसरा स्तर था युद्ध और युद्ध के पश्चात की अवधि का अधिक अन्न उपजाओ आन्दोलन और मैं समझता हूँ, यह कहना ठीक है कि प्रथम या द्वितीय पंचवर्षीय योजना को स्वीकार करने से 'अधिक अन्न उपजाओ' आन्दोलन द्वारा निकाले गये विधियों में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है।

'अधिक अन्न उपजाओ' युग में उद्विकसित और आजतक प्रवर्तित विचार के दो पक्ष संयोजना दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण हैं। प्रथम है इस कार्य्यक्रम को स्वतंत्र विकास कार्य्यों की एक शृंखला के रूप में देखना। प्रथम पंचवर्षीय योजना की समीक्षा में योजना आयोग ने लिखा है:

"प्रथम पंचवर्षीय योजना में कृषि उत्पादन के लक्ष्य अनेक विकास कार्य्यक्रमों की पूर्ति के परिणाम-स्वरूप संभावनाओं पर आधारित किये गये हैं। इसमें बृहत सिंचाई प्रबंध, लघु सिंचाई योजना, खाद और उर्वरकों का आयोजन, उन्नत बीजों का उत्पादन और वितरण, भूमि का विकास और कृष्यकरण, सस्य-रक्षा और गहन कृषि के अन्य प्रबंध सम्मिलित हैं। प्रत्येक कार्य्यक्रम की पूर्ति के माप के लिये निश्चित क्षेत्रों में उत्पादन संभाव्य की वृद्धि के मापदंड निर्धारित किये गये थे।"

इस प्रकार देशीय कार्य्यक्रमों के सर्वव्यापी प्रभावों के रूप में दूसरा पक्ष तर्कानुसार अनुवृत्त होता है। सर्वप्रथम देश या राज्य के लिये लक्ष्य बनाये

जाते थे और तब वे लघुतर क्षेत्रों के लिये युक्तिपूर्ण ढंग से विभाजित किये जाते थे। कृषि प्रशासन समिति (अक्तूबर १९५८) के विवरण में यह लिखा है। वर्तमान रीति के अनुसार भूमिविकास या वितरण योजनाओं के देशीय लक्ष्य को जिलानुसार और तब जिला लक्ष्यों को खंड तथा तहसील लक्ष्यों में विभाजित किया जाता है। ग्राम कृषि योजनायें इसी आधार पर बनती हैं।"

अनेक विकास कार्य्यक्रमों के संभावित परिणामों को सम्मिलित कर समस्त देश के लिये भी लक्ष्य बनाने का विशेष महत्व नहीं है। उदाहरण स्वरूप यह आशा की गयी थी कि प्रथम पंचवर्षीय योजना अवधि के समस्त प्रयत्नों का परिणाम चावल के उत्पादन में विशेष, गेहूँ के उत्पादन में पर्याप्त और वज्रादि (Millets) तथा अन्य खाद्यान्नों में साधारण वृद्धि होगी। लेकिन वास्तविक परिणाम बहुत भिन्न रहे। जबकि गेहूँ में साधारण संभावनायें किसी तरह पूरी हुई चावल के उत्पादन में संभावित वृद्धि से बहुत अधिक कमी रह गयी और दूसरी तरफ़ वज्रादि तथा अन्य खाद्यान्नों के संबंध में उत्पादन संभावना से बहुत अधिक बढ़ गया। और यह महत्वपूर्ण बात है कि संपूर्ण परिणामों में इस भिन्नता के लिये कोई संतोषजनक व्याख्या प्राप्त नहीं है।

दूसरी पंचवर्षीय योजना को सामने रखते हुए योजना आयोग ने स्पष्टतः इस दृष्टिकोण की परिसीमाओं का अनुभव किया और उसे सुधारने का निश्चय किया। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के निम्नलिखित उद्धरण से योजना अयोग के मन्तव्य तथा आशायें स्पष्ट होती हैं।

"कृषि जिन अनिश्चितताओं का आवश्यक रूप से शिकार है उनके उपरान्त भी यह महत्वपूर्ण है कि कृषि विकास में संयोजित दृटिकोण लाने के लिये और भी अधिक विचारे हुए प्रयत्न किये जाने चाहियें। कृषि संयोजन के प्रधान अंग हैं:

(१) भूमि प्रयोग की योजना,

(२) दीर्घ तथा लघु अवधि लक्ष्यों का निर्धारण,

(३) उर्वरकों के वितरण इत्यादि सहित विकास कार्य्यक्रमों और योजनानुसार उत्पादन लक्ष्यों और भूमि उपयोग योजनाओं में राजकीय सहायता को संयुक्त करना, और

(४) एक उपयुक्त मूल्य निधारण नीति।

प्रत्येक जिला और, विशेषतः, प्रत्येक राष्ट्रीय विस्तार और सामूहिक विकास योजना क्षेत्र में सयत्न निर्मित कृषि योजना होनी चाहिये। इसे विभिन्न प्रयोगों में भूमि के साधारण वितरण, विकास कार्य्यक्रम तथा गाँवों के लिये साध्य लक्ष्यों को निर्दिष्ट करना चाहिये। जिसकी रूपरेखा पहले के परिच्छेदों में दी जा चुकी है उस समस्त मूल्य निर्धारण नीति के अन्तर्गत ऐसी स्थानीय योजनायें राज्यों, प्रक्षेत्रों तथा समस्त देश के अधिक यत्नपूर्ण संयोजन की दिशा में महत्वपूर्ण पग होंगे।"

वास्तव में यद्यपि द्वितीय पंचवर्षीय योजना में अन्तर्विष्ट एक भी उपरोक्त प्रस्ताव को कार्य्यान्वित नहीं किया गया तथापि प्रथम पंचवर्षीय योजना अवधि में और उससे पूर्वसिद्ध रीतियों और दृष्टिकोणों का अनुकरण आज भी हो रहा है। राज्य के कृषि योजनाओं की प्रगति की समीक्षा में प्रत्येक योजना द्वारा संभव अतिरिक्त उत्पादन की गणनायें होती हैं, और योजना पूर्ति की मुख्य जाँच अभी भी व्यय की प्रगति है। अनेक वर्ष पूर्व 'बंबई के अधिक अन्न उपजाओ नीति समिति (१९५९)' ने क्षेत्र अधीक्षणों से विशिष्ट तथा समस्त योजनाओं द्वारा संभव 'निष्पादित अतिरिक्त उत्पादन' के सरकारी आँकड़ों को जांचा और पर्याप्त अन्तर पाया। १९५८ में कृषि प्रशासन सिमिति ने लिखा :—"अनुपाती अतिरिक्त उत्पादन प्राप्त किये बिना ही हम आजकल केवल आर्थिक लक्ष्यों की पूर्ति का दृश्य देख रहे हैं।"

राष्ट्रीय विकास योजनाओं के मार्ग से कृषि की योजनायें बनाने से उनमें दो त्रुटियाँ आ जाती हैं। प्रथम, यह संभाव्य विकास के संपूर्ण प्रयोग करने में असफल रहता है। सामान्य या साधारण अवस्थाओं को दृष्टान्त मानकर जो योजनायें बनायी जाती हैं वे किसी भी अवस्था विशेष में किसी न किसी मात्रा में अवश्य अनुपयुक्त या अनावश्यक प्रतीत होंगी। इससे भी अधिक, विशेष अवस्थाओं में, योजना का दृष्टिकोण ही गलत हो सकता है और तब वैसे प्रयत्नों की आवश्यकता हो सकती है जिन्हें सामान्य योजना में कोई भी स्थान नहीं मिली थी। कृषि प्रशासन समिति के विवरण ने वर्तमान योजना प्रणाली के व्यर्थ और प्रायः हास्यास्पद निष्कर्षों को दो पृष्टों में चित्रित किया है। यह वर्णन इस प्रकार प्रारंभ होता है: "उत्पादन वृद्धि की नीतियों के निर्माण में कृषि विभागों के विचारों का कोई मूल्य नहीं होता। कुछ राज्यों में यह अनुभव किया गया कि यद्यपि खण्डें कभी-कभी एक दूसरे से विशेष प्रकार से भिन्न थीं फिर भी काम करने की विधि और संचित धन का वितरण

एक-सा और निश्चल था।" यह विवरण निम्नलिखित उदाहरण और टिप्पणी के साथ समाप्त होता है :—"एक राज्य में ३५ लाख एकड़ भूमि में पानी जमा रहता था लेकिन फिर भी राज्य की योजना में इस तर्जन तथा उत्पादन पर इसके विपरीत प्रभाव को दक्षतापूर्वक रोकने के लिये कोई योजना भी सम्मिलित नहीं की गयी। यदि कार्य्यक्रम की योजना पर यथेष्ट बल दिया जाता तब इस प्रकार की गंभीर भूल नहीं होती।"

इस दृष्टिकोण की इतनी ही महत्वपूर्ण दूसरी त्रुटि है कि इससे कृषि संयोजन की संभावना और प्राप्ति के बीच बहुत ही कम संबंध रह जाता है। राष्ट्रीय स्तर पर भी आशाओं और वास्तविकताओं के बीच बड़ी भिन्नता की चर्चा मैं ऊपर कर चुका हूँ। जब छोटे से छोटे क्षेत्रों के आधार पर गणना की जाती है तब यह अनुरूपता घटती ही जाती है।

एक योजना जो सभी स्थानों और प्रक्षेत्रों की आर्थिक अवस्था के सभी विभागों का समकक्ष विकास करना चाहता है उसमें बहुत ही अधिक मात्रा में विशिष्टता होनी चाहिये। इसे न केवल संभाव्यों का सम्पूर्ण प्रयोग करना चाहिये वरन् इसे यह भी आश्वासन देना चाहिये कि प्रत्येक विभाग में विशिष्ट साधनों का संयोजित विकास अन्य विभागों के विकास योजनाओं के प्रयोग या खपत में उचित रूप से अन्तर्ग्रथित हैं। इस प्रकार यदि विकास की विधि को सरलता से प्रगति करना है तब साधन उत्पादन और क्षेत्र योजनाओं के संभाव्यों और निष्पादनों के बीच बहुत अधिक अनुरूपता होने की आवश्यकता है। लेकिन ऐसा तभी हो सकता है जब वर्तमान दृष्टिकोण का उत्क्रमण किया जाय और कृषि योजनायें मूलतः स्थानीय रूप से निर्मित योजनाओं को सम्मिलित और संयोजित कर बनी हो न कि राष्ट्रीय स्तर पर बने कार्य्यक्रमों और आगणनों के विभाजन से बनाई गयी हो।

आश्चर्य की बात है कि इस दृष्टिकोण में परिवर्तन की आवश्यकता के संबंध में कोई गंभीर मतभेद नहीं मालूम होता। इस संबंध में मैंने पहले ही योजना आयोग के विचार उद्धृत कर दिये हैं। फोर्ड उपपादन (Ford Foundation) द्वारा आयोजित कृषि उत्पादन संघ के विवरण में लिखा हैं—"इतने ही महत्वपूर्ण विकास कार्य्यक्रमों को ग्रामों खंडों तथा क्षेत्रों के प्रत्येक किसान की परिस्थितियों में उचित ढंग से सम्मिलित करना चाहिये।" कृषि प्रशासन समिति इसी विषय को और अधिक ज़ोर देकर लिखती है।

"द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत भूमि विकास के विभिन्न प्रबंधों और उर्वरकों तथा बीजों के वितरण के लक्ष्यों को कार्य्यान्वित करने के स्थान पर कृषि विभागों को प्रत्येक ग्राम में कृषि उत्पादन वृद्धि की योजनाओं का निर्माण करना चाहिये। यदि एक गाँव में उत्पादन वृद्धि की सर्वतोमुखी योजना बनाकर कार्य्यान्वित की जाय तब द्वितीय पंचवर्षीय योजना के लक्ष्य स्वयं ही पूरे हो जायेंगे और यदि इन लक्ष्यों की प्राप्ति न भी हो सकी, तब भी विशेष अन्तर न होगा जब प्रत्येक गाँव के कृषि उत्पादन में वृद्धि हो जायगी।'

इसके साथ ही राष्ट्रीय आर्थिक विकास योजना केवल ग्राम योजनाओं के योग से भिन्न है और राष्ट्रीय योजना की साधारण आकृति के बिना किसी ग्राम योजना का सृजन संभव नहीं। इसीलिये संयोजन को द्विधा रीति कहा गया है। इस कथन का तात्पर्य यह है कि जहाँ सर्वछादी लक्ष्य और नीतियों, प्रयत्नों के गहनता की मात्रा और विभिन्न कार्य्यों को समकक्ष करने की रीति, पूरे देश या राज्यों के लिये निश्चित किये जायेंगे वहाँ किसी क्षेत्र या स्थान के संबंध में किये जाने वाले प्रयत्नों की रीति और सीमा को अवस्था विशेष के लिये निश्चय किया जाना होगा। इसीलिये जबकि प्रत्येक अवस्था विशेष में कर्तृत्व का निश्चय समस्त लक्ष्यों और निर्देशों के आधार पर होना चाहिये, समस्त प्रयत्नों के निदृष्ट वास्तविक लक्ष्यों का निश्चय केवल अवस्था विशेष के लिये प्राप्त संभावनाओं के आगणकों के योग के संबंध में ही किया जा सकता है। इस प्रकार परस्पर प्रभाव डालने वाली रीति के आयोजन से ही एक यथार्थवादी, अर्थपूर्ण और विस्तृत राष्ट्रीय योजना का निर्माण किया जा सकता है।

सभी क्षेत्रों में संयोजन के लिये द्विधा रीति महत्वपूर्ण है, फिर भी भारतीय कृषि की विशेष परिस्थिति में इसकी आवश्यकता अत्यधिक है। जहाँ शासन किसी कार्य्यक्रम पर नियंत्रण रखती है, शासन द्वारा संयोजन मुख्यतः, उसकी प्रशासन प्रणालियों की दक्षता से संबंधित होती है। गैर-सरकारी क्षेत्रों के संयोजन का संबंध उन इकाइयों के कार्य्यक्रम के साथ होता है जो स्पष्ट रूप से शासन के अधीन नहीं होते। उन्हें आदेश दिया जा सकता है, प्रेरणा दी जा सकती है, प्रोत्साहन दिया जा सकता है या उन्हें दबाव में डाला जा सकता है। किसी क्षेत्र की इकाई में कार्य्यक्रम जिस मात्रा में थोड़े होते हैं जिससे उनपर काम करने के विभिन्न मार्ग और प्रभाव पूर्णतः स्थिर और स्पष्ट हो

जायें शासन नीतियों और योजनाओं में उसी मात्रा में उपयुक्त प्रबंध किये जा सकते हैं और लक्ष्यों की प्राप्ति इत्यादि बिना किसी कठिनाई के आश्वासित हो सकते हैं। फिर भी, कृषि क्षेत्र में न केवल उत्पादन इकाइयाँ गैर-सरकारी है बल्कि वे प्रधानतः छोटे और संख्या में बहुत अधिक हैं। इसके अतिरिक्त वे संपूर्ण देश में अनिवार्य रूप से फैले हुए हैं। भारतीय कृषि में उत्पादन तथा संधारण के स्वतंत्र इकाई, बहुत अंश में, परिवार का प्रक्षेत्र है। प्रत्येक कृषि परिवार अपना काम स्वतंत्र रूप से करता है और कृषि उत्पादन के रूप में समस्त फल देश के लाखों कृषि परिवार के कार्य्यों का योगफल होता है। उनके निश्चयों और कार्य्यों को प्रभावित करने की आवश्यकता है, और कृषि संयोजन को आवश्यक रूप से प्रोत्साहन संयोजन या इन असंख्य संधारणों के समूह को निश्चय तथा वांछित निष्कर्षों को प्राप्त करने के लिये काम कराना चाहिये।

वैयक्तिक कृषि उत्पादकों के कार्य्यक्रमों से संबंधित कृषि संयोजन की प्रधान समस्या पर विचार करने से पहले भारत में कृषि संयोजन के दूसरे पक्ष की कुछ बातों की ओर, अर्थात उच्चतम स्तर पर साधारण नीतियों की आकृति का संक्षेप में मैं उल्लेख करूँगा। केन्द्रीय तथा राज्य स्तरों पर उपयुक्त नीतियों का निर्माण और उनका समन्वय करना किसी विभाग के संयोजन के लिये अनिवार्य है। आजकल केन्द्रीय सरकार में इस आवश्यक कार्य्य की स्पष्ट कमी है। इससे उत्पन्न परिस्थिति को चित्रित करने के लिये मैं कुछ उपयुक्त समस्याओं का उल्लेख करूँगा। भारत में संयोजन के प्रारंभ से ही साधारण रूप से यह स्वीकार किया जाता रहा है कि कृषि योजना को कार्य्यान्वित करने के लिये शासन की ओर से उपयुक्त मूल्य निर्धारण नीति की आवश्यकता है। लेकिन यह मूल्य निर्धारण नीति संपूर्णतः अनुपस्थित रही है। गत कुछ वर्षों की ही बात ले लें। द्वितीय पंच वर्षीय योजना की अवधि के प्रारंभ में शासन की ओर से संपूर्ण अनियंत्रण कर दिया गया। १९५५ के अनियंत्रण के बाद शासन द्वारा खाद्यान्नों के भी मूल्य निधारण के लिये किसी नीति का प्रवर्तण नहीं किया गया। १९५६-५७ में इनके मूल्यों में चढ़ाव देखते हुए शासन ने एक समिति नियुक्त की जिसने १९५७ में अपना विवरण प्रस्तुत किया। इस विवरण के अनुसार कुछ काम नहीं किया गया और समिति द्वारा खाद्यान्नों के व्यापार को सम्यक करने के स्थान पर नम्र अभिस्तावनों को भी शासन ने स्वीकार नहीं किया। समिति द्वारा विवरण के प्रस्तुत करने के प्रायः एक वर्ष बाद, शासन ने अचानक खाद्यान्नों में राज्य

व्यापार जिसे कहा गया उसके विषय में अपना निर्णय घोषित कर दिया। विभिन्न राज्यों में इस निर्णय का अनेक अर्थ लगाया गया और खाद्यान्न नीति में पहले से फैली संपूर्ण अशान्ति को और भी बिगाड़ दिया। संभवतः खाद्य व्यापार और मूल्यों की नीति से संबंधित विषय को लेकर हाल में ही केन्द्रीय खाद्यमंत्री ने पदत्याग किया, परन्तु इस पदत्याग के फलस्वरूप न तो शासन के खाद्यान्न नीति के प्रति किसी दिशा में निश्चित निर्णय ही हो पाया है और न ऐसा समझ लेने का कोई कारण ही है।

इस नीति का वह भाग जो आज कार्य्यान्वित है वह है परिधियों का निर्माण। खाद्यान्न जाँच समिति ने, जिसने १९५७ में अपना विवरण प्रस्तुत किया, यह स्वीकार किया है कि परिधियाँ लाभदायक काम कर सकतीं हैं विशेषतः स्वतंत्र व्यापार और वास्तविक नियंत्रणों के संक्रमण अवधि अन्तराल में। समिति ने आगे यह लिखा :— "परिधियों का उद्देश्य है कमीवाले क्षेत्र से अतिरेक क्षेत्र को मिला देना और इस प्रकार शासन के प्रदायों की मांग न्यूनतम और खाद्यान्नों के वहन-प्रतिवहन का निराकरण हो जाय। लेकिन यदि परिधियों को बार-बार बदला जाता रहा तब उससे साधारण व्यापार कलाप बिगड़ जायगा और सभी तरफ़ बहुत अधिक कठिनाइयाँ उठ खड़ी होंगी। परिधियों की पद्धति में सुधार प्राप्त करने की संभावना से राजनीतिक दबाव को प्रोत्साहन मिलता है। परिधियों की किसी पद्धति को कार्य्यान्वित करने से पहले कमीवाले क्षेत्रों में उपयुक्त प्रदायों का प्रबंध अनिवार्य रूप से होना चाहिये। एक बार जब परिधियाँ बना दी जायंगी तब उन्हें अपेक्षाकृत दीर्घावधि के आधार पर स्थिर रखना चाहिये जिससे व्यापार कलाप में प्रायः बाधा न पड़ सके।"

ये बातें बताती हैं कि किसी नीति की, जो किसी न किसी रूप में अनेक वर्षों तक चलती रही है, अर्थपूर्ण व्याख्या करना कितना कठिन है। संक्रमण अवधि तक ही सीमित रहने के स्थान पर परिधियाँ ही वर्तमान खाद्यान्न व्यापार और सरकारी मूल्य-निर्धारण नीति का स्थायी अंग दीखती हैं और इन्हें सापेक्षतया स्थिर मानने की जगह उनको इतनी बार बदला जाता है कि वे ठीक उन्हीं बुरे परिणामों का कारण बन जायें जिनका खाद्यान्न जाँच समिति को भय था।

न केवल कोई बोध्य वास्तविक नीति ही कार्य्यान्वित नहीं है, वरन् शासन के उद्देश्यों और मन्तव्यों को स्पष्ट समझना भी कठिन है। उदाहरणार्थ, गत

कुछ सप्ताहों में वर्तमान खाद्यान्न के मूल्यों के घटने पर शासन ने संतोष प्रकट किया है। व्यापार तथा मूल्य नियंत्रण को सामान्य रूप से स्वीकृत करने से पूर्व यह सभी अविकसित देशों में सर्वसाधारण अनुभव रहा था और यही अनुभव भारत का भी रहा है विशेषतः १९५३ से, कि कृषि सामग्रियों, विशेषकर खाद्यान्नों के मूल्य ठीक कटौनी के बाद सबसे कम और कटौनी से कुछ महीना पहले अधिक हो जाते हैं और दो छः महीनों की अवधियों में मूल्यों के माध्य स्तरों में स्पष्ट अन्तर रहता है। इस दशा में, कटौनी के समय मूल्यों में कमी के संबंध में सरकार को संतोष प्रकट करने का अधिकार तभी होगा जब यह मूल्य परिवर्तन के चक्र में परिवर्तित होने की इच्छा रखता हो और कटौनी के घटे मूल्य स्तर पर ही मूल्यों को स्थिर करने के लिये प्रभावशाली यत्न करे। ऐसे किसी सरकारी नीति की घोषण और मूल्यों को स्थिर करने के लिये वास्तविक प्रयत्नों के न रहने पर, गत कुछ सप्ताहों में सरकारी प्रतिनिधियों की बातों का केवल यही अर्थ निकल सकता है कि उनको किसानों और खरीद-दारों के निरंतर असंतोष और व्यापारियों के निश्चित सौभाग्य पर संतोष है। अनेक महीनों के मनन के बाद भी केन्द्रीय खाद्य तथा कृषि मंत्रालय का एक निश्चित मूल्य निर्धारण नीति के निर्माण और घोषणा का प्रायः जानबूझकर अस्वीकार करना इस संबंध में एक विशेष महत्व रखता है। खाद्यान्नों और कृषि उत्पादनों के मूल्यों से संबंधित परिस्थिति न केवल योजना नीति के आधारभूत समस्याओं के संबंध में भारतीय सरकार की असमर्थता वरन् जो शासन में हैं उनके यथार्थ सामाजिक उद्देश्यों के प्रति गंभीर शंकायें उत्पन्न कर देती हैं।

सर्वछादी विचारों और विभिन्न मंत्रालयों के कार्य्यक्रम के बीच समन्वय में कमी होने का उदाहरण देने के लिये खाद और उर्वरकों के प्रदाय की समस्या का प्रसंग दिया जा सकता है। कृषि प्रशासन समिति ने अपने विवरण में संकेत किया कि प्रायः सभी राज्यों में यह अनुभव किया जाता है कि भारत सरकार द्वारा उन्हें संतोषजनक मात्रा में उर्वरक नहीं दिया जाता है। उन्नत कृषि उत्पादन के कार्य्यक्रम के संबंध में उर्वरकों का जो केन्द्रीय स्थान है उसकी दृष्टि से इनके यथेष्ट प्रदाय के महत्व का अवागणन नहीं किया जा सकता। फिर भी सरकार मूँगफली की खली के निर्यात को प्रोत्साहन देती रही है। यह नीति संभवतः उस निर्यात प्रवर्तन समिति के अभिस्तावनों पर आधारित है जिसने निम्नलिखित प्रकार से तर्क किया :—"अभी भी हम बहुत बड़ी मात्रा में उर्वरकों का उत्पादन कर रहे हैं और आवश्यकता के उस भाग को

जिसकी पूर्ति देशीय उत्पादन से नहीं हो सकती आयात कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त छोआ, हमें बताया गया है पशु खाद्य के लिये अधिक से अधिक मात्रा में प्रयोग किया जा सकता है। उर्वरकों के प्रदाय के संबंध में इस समिति के आत्मतुष्ट विचारों से किसी भी कृषि विज्ञ को सहमत होना संभव नहीं है; लेकिन सरकार की एक मंत्रालय इसे स्वीकार करती है।

मूँगफली की खली का स्थान एक रोचक विषय बन गया है। उदाहरणार्थ, बम्बई राज्य में मूँगफली की खली का खाद के रूप में प्रयोग करने के लिये न केवल सरकार ने ही समर्थन किया वरन् मिलों से इसके संभरणों को लेकर और खाद के रूप में इसके विक्रय को सहाय्य देने की नीति के द्वारा इसका प्रचार और प्रयोग बढ़ाया गया। गत दो दशाब्दियों में मूँगफली की खली विशेषतः गन्ना जैसे फसलों के लिये सबसे अधिक महत्वपूर्ण खाद स्थापित हो गया है। स्पष्टतः सरकार या इसके विशेषज्ञ अब यह विचार प्रकट करते हैं कि मूँगफली की खली का खाद के रूप में प्रयोग अनावश्यक है और उसका निर्यात कर विदेशी मुद्रा प्राप्त करना अपेक्षाकृत अधिक लाभदायक होगा। इस परिवर्तित विचार की सत्यता को स्वीकार करने पर भी अपनी नीति को मूलतः बदलने से पहले सरकार को कम से कम दो काम अवश्य करना चाहिये। प्रथम, कृषि के ऐसे तरीकों को अपनाने के लिये प्रेरित करना चाहिये जो या तो मूँगफली की खली के प्रयोग को पूरी तरह हटा देते हैं या इसकी मात्रा को बहुत ही घटा देते हैं। द्वितीय, मूँगफली की खली के स्थान पर जिन उर्वरकों या खादों के प्रयोग का परामर्श इसके विशेषज्ञ देते हैं यथेष्ट मात्रा में उनके प्रदाय का प्रबंध सरकार को करना चाहिये। इस विषय से कुछ परिचय होने के कारण में विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि कम से कम इस राज्य में शासन ने ऐसे कोई यत्न नहीं किये हैं। आज यद्यपि मूँगफली की खली का मूल्य बहुत अधिक बढ़ गया है फिर भी गन्ना उगाने वाले किसान पहले जितनी मात्रा में इसे डालते थे अब भी उसी मात्रा में प्रयोग करते हैं जिसके फलस्वरूप गन्ना का उत्पादन मूल्य बहुत बढ़ गया है।

यह संक्षिप्त विवरण भारत में कृषि संयोजन के एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पक्ष को स्पष्ट करता है। इससें यह सिद्ध होता है कि अनुसंधान और खेत में प्रयोग के बीच सापेक्षतया प्रायः कोई संबंध नहीं। राजकीय कृषि आयोग ने इसे भारतीय अवस्था की आधारभूत त्रुटि पाया था और १९५८ के कृषि प्रशासन समिति ने भी लिखा है कि यद्यपि देश के संपरीक्षात्मक केन्द्रों ने

पौधों के खाद की आवश्यकताओं के विषय में वैज्ञानिक सूचनायें एकत्रित करली हैं इनका वास्तविक प्रयोग अभीतक नहीं किया गया है। इसके साथ ही, कृषि नीतियों के निर्माण में, सरकार और उनके विशेषज्ञ उन परीक्षणों के निष्कर्षों का प्रयोग करते हैं जिनके वास्तविक प्रयोग को कार्य्यान्वित करने का उन्होंने प्रयत्न तक नहीं किया है। (पशु आहार के संबंध में छोआ का उपरोक्त प्रसंग इसका उदाहरण है।) इसपर ज़ोर देने की आवश्यकता है कि अनुसंधान के परिणामों को खेतों में सिद्ध और प्रचार करने का सरकार का उत्तरदायित्व उतना ही है जितना स्वयं अनुसंधान करने का। बिना यह देखे कि अनुसंधान संपरीक्षाओं के परिणाम वास्तविक प्रयोग में लाये गये हैं और साधारणतः स्वीकृत हुए हैं उनके आधार पर काम करना संयोजन की सफलता को कुंठित करना है; क्योंकि यह अनुसंधान में और सरकार की नीति को उचित मान लेने में किसानों के विश्वास को नगण्य कर देता है। उर्वरकों के प्रदाय संबंधित परिस्थिति भी केन्द्रीय सरकार के समन्वित विचार और सर्वछादी कार्य्यक्रमों की आवश्यकताओं के व्यापक आगणन की अनुपस्थिति पर ज़ोर देता है। यह कदाचित इन संबंधित मंत्रालयों के बीच समन्वित विचार तथा कार्य्यक्रम की गंभीर कमी का द्योतक है जैसे कृषि तथा खाद्य मंत्रालय, वाणिज्य तथा उद्योग मंत्रालय और अर्थ मंत्रालय।

मैं एक समस्या का प्रसंग लाकर, जिस क्षेत्र में संयोजन को सफल बनाने के लिये सरकार द्वारा काम करने के वास्तविक कार्य्यक्रम की आवश्यकता है, इस चर्चा को समाप्त करूँगा। यह समस्या वर्तमान सिंचाई साधनों के अभिकथित असम्पूर्ण प्रयोग की है। यह स्पष्ट है कि यदि सिंचाई के प्रबंध से पानी के साधनों का शीघ्र ही सम्पूर्ण प्रयोग करने की जरूरत है तब केवल सिंचाई प्रबंधों के निर्माण के अतिरिक्त बहुत कुछ संयोजित और कार्य्यान्वित करना होगा। क्षेत्र के अंतिम प्रयोग कर्ता को पानी देना और जिनका उपयुक्त प्रयोग किसी विशेष परिस्थिति में सिद्ध हो गया है उन जाँचे हुए प्रभेदों का नये कार्य्यक्रम में किसानों के प्राद्यौगिक शिक्षा तथा उनको कार्य्यान्वित करने के लिये ऋण, सामग्री की सुविधा का अग्रिम संयोजन सम्मिलित है। इसमें यातायात, मंडी केन्द्रों, विधायन प्रबंध तथा अन्य यंत्र जो नये सस्यों और उत्पादन प्रतिरूपों के साथ होते हैं उन सभी प्रबंधों के संयोजन और निर्माण भी सम्मिलित हैं। गत कुछ वर्षों से सिंचाई प्रबंध के अधिकारियों ने भविष्य के आर्थिक लाभों या अतीत के आर्थिक निष्पादनों के आगणन में पर्याप्त रुचि दिखाई है। इस संबंध

में मैं निवेदन करूँगा कि यह दृष्टिकोण केवल आर्थिक गणना तक ही सीमित न की जाय। भविष्य के सभी कार्य्यक्रमों के संबंध में, उदाहराणर्थ, मुझे यह आवश्यक प्रतीत होता है कि जिस प्रक्षेत्र में सिंचाई के नये प्रबंध बनने वाले हैं उसमें सम्पूर्ण संयोजन के लिये अभियन्ता (Engineer) क्षेत्रकी विज्ञ (Agronomist), अर्थशास्त्री इत्यादि के संयुक्त परामर्श लिये जाने चाहिये। उस प्रक्षेत्र में पानी और भूमि साधनों के प्रयोग के लिये अनुकूलतम योजना बनाने के ऐसे प्रयत्न विकास से संबंधित सभी समस्याओं को स्पष्ट कर देंगे और परिणामस्वरूप नये सिंचाई प्रबंधों के शीघ्रतर त ा अधिक सम्पूर्ण उपयोग से ठीक मात्रा में व्यय तथा परिश्रम का मूल्य मिल सकेगा।

अन्ततोगत्वा, कृषि उत्पादन में वृद्धि की योजना राज्य के कार्य्यक्रमों पर उतना निर्भर नहों करता जितना किसानों के व्यक्तिगत परिश्रम पर राज्य के कार्य्यक्रम प्रधानतः विस्तृत, अधिक गहन या भूमि तथा नैसर्गिक साधनों के अधिक उत्तम प्रयोग की संभावना का सृजन करते हैं, इन संभावनाओं को प्राप्त करना वास्तव में स्थान विशेष के किसानों के कार्य्यक्रम पर निर्भर करता है। इसीलिये कृषि संयोजन की वास्तविक समस्या किसानों को उचित ढंग से काम करने की प्रेरणा देने या संचालित करने की है।

कृषि संयोजन में परिवर्तित दृष्टिकोण अर्थात नीचे से ऊपर की योजना बनाने की आवश्यकता से संबंधित आजकल की सहमति के विषय में मैं चर्चा कर चुका हूँ। अब मैं एक केन्द्रीय प्रश्न पर विचार करूँगा कि क्यों इस दृष्टि-कोण को कार्य्यान्वित करना संभव नहीं हो सका है और वांछित परिवर्तन को वास्तविक रूप देने के लिये किस वस्तु की आवश्यकता है। नीचे से ऊपर संयोजन एक द्विधा विधायन है और इसे उनकी परिसीमाओं के साथ भौतिक उपकरणों तथा उनके स्वभावों के साथ जन साधनों और उनके प्रयोजनों के साथ किसानों का ध्यान रखना है।

कृषि में नीचे से प्रभावशाली संयोजन की आवश्यकताओं पर विचार करूँगा। इनकी अनुपस्थिति के कारण संगठन और शिक्षा के दोनों दिशाओं में कोई प्रगति न हो सकी है। मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि जब मैं संगठन की चर्चा करता हूँ मेरा तात्पर्य कृषि उत्पादन के संगठन अर्थात, उदाहरणार्थ कृषि उत्पादन इकाई को कितना बड़ा या छोटा होना चाहिये और क्या स्वतंत्र किसान या सहकारी कृषि संस्था ही इसका प्रमुख या अनन्य रूप है, इससे नहीं

है। यहाँ मैं कृषि उत्पादन के इकाईयों, व्यक्तिगत किसान या सहकारी संस्थाओं के संगटन की चर्चा कर रहा हूं।

प्रभावशाली संयोजन प्रत्येक उत्पादन इकाई के संगटन की पूर्व कल्पना करता है। इसकी आवश्यकता अनेक इष्टों से निकलती है जिनमें निम्नलिखित अधिक महत्वपूर्ण हैं। यदि संयोजन का फल बिना किसी अपव्यय तथा विलम्ब के प्राप्त करना है तब उत्पादकों के आचरण में अप्रत्याशित या विरोधी प्रतिरूपों और उनके कार्य्यक्रम में एक समानता प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक है। जिस मात्रा में किसी क्षेत्र में आर्थिक कार्य्यक्रम अनेक छोटे, क्षीण तथा अनुपकरित इकाइयों से भरे हैं उसी मात्रा में इन सभी प्रयत्नों का समन्वय उनको आर्थिक तथा प्राद्यौगिक बल देने के लिये आवश्यक है। अन्त में जब भी किसी समस्त आर्थिक क्षेत्र के कार्य्यक्रमों के मार्गप्रदर्शन की आवश्यकता होती है, इसे सापेक्षतया क्षेत्र के इकाइयों के थोड़े से संस्थाओं द्वारा करा लेना अत्यधिक उपयोगीसिद्ध होगा। न केवल यह द्विधा विधायन को सरल कर देता है वरन् वाह्य प्रशासन प्रयत्नों को पर्याप्त मात्रा में घटाकर कार्य्य को दक्ष और आन्तरिक व्यवस्थापन की संभावना के कारण योजनाओं को आनम्य बना देता है।

संगठन की आवश्यकता और इसके कार्य्य गत तीन दशाब्दियों में पूँजीवादी तथा साम्यवादी दोनों देशों के अनुभव में प्रदर्शित हैं। "नये व्यवहार" (the New Deal) ने अमेरिकन राज्यनीति के सिद्धान्तों और प्रतिकूलताओं से मौलिक रूप में प्रस्थान करना तथा नयी नीति को कार्य्यान्वित करने के लिये निर्माणकर्त्ताओं और श्रमिकों की एक संस्था बनाना आवश्यक समझा।

कृषि उत्पादन के विक्रय में दक्षता और नियम और अंगरेज किसानों के कार्य्यक्रम में अर्थव्यवस्था लाने के लिये इंगलैंड में व्यापार मंडलों की एक श्रृंखला बना दी गयी। सभी साम्यवादी देशों में किसानों को अनेक प्रकार के सुसंगठित संस्थाओं में संगठित करना पड़ा; शब्दावलियों की यह श्रृंखला "सहकारिता, सामूहिक तथा राज्य प्रक्षेत्र" या "उत्पादन वाहिनी, सहकारी संघ तथा समुदाय (commune)" साम्यवादी संयोजन में उच्च से उच्चतर संगठन की आवश्यकता बताती हैं। असाम्यवादी अविकसित देशों ने भी सामान्य कृषि विकास या कृषि सुधार के विशेष विधियों के लिये राज्य द्वारा क्वीकृत सहकारिता रीतियों को अपना लिया है। ऐसा मेक्सिको, दक्षिण इटली, मिश्र तथा तुर्की में किया गया। और महायुद्ध के बाद जापान के कृषि में

अद्‌भुत सफलता का आधार कृषि सहकारिता में सम्पूर्ण योग था। सामूहिकरण से पीछे हटने के वाद युगोस्लाविया ग्रामीण सहकारिता द्वारा ही अपना संयोजन कार्य्य चलाता है।

भारत में जबतक कृषि उत्पादक उसी प्रकार विखरे और असंगठित रहेंगे जैसा वे आजकल हैं तबतक उनके संबंध में संयोजन की चर्चा करना व्यर्थ है। भारत में कृषि संयोजन को संभव बनाने की पहली सीढ़ी है कृषि उत्पादकों को इस प्रकार संगठित करना कि उनकी संस्था संयोजन के उद्देश्यों अर्थात उन्नत तथा दक्ष उत्पादन में रुचि प्राप्त कर लें और उसी के अनुसार कार्य्य करने को प्रस्तुत हों। साथ-साथ संगठन इस प्रकार की होनी चाहिये कि संयोजन के लक्ष्य किसी वल या सरकारी अधिकार के प्रयोग के विना ही प्राप्त किया जा सके।

संभावनाओं का चित्रण मैं सहकारी चीनी कारखानों के कार्य्यक्रम की विस्तृत चर्चा द्वारा करूँगा। यह अनेक गन्ना उगाने वाले किसानों की एक संस्था है जो अपने व्यापार के कारण ही अपने सदस्यों से अच्छे गन्ना के प्रदाय में अत्यन्त रुचि रखते हैं। इसीलिये, गन्ना की खेती के युक्तियुक्त विस्तार और इसके कार्य्यक्रम को दक्षतापूर्वक चलाने के लिये यह संस्था सभी संभव उपाय करने को तैय्यार रहता है। इसके सदस्यों द्वारा गन्ना की खेती पर दृष्टि रखने के लिये कृषि अधिकारियों, क्षेत्र अधिकारियों इत्यादि को संस्था के लिये नियुक्त करना लाभदायक हो जाता है।

यह संस्था यह देखते रहना आवश्यक समझता है कि गन्ना ठीक मौसम में बोया गया या नहीं, बुआई की प्रयुक्त रीति और अन्य कार्य्य सबसे दक्ष रहे हैं या नहीं, और क्या सदस्यों को यथेष्ठ ऋण मिला है और क्या उन्होंने उचित मात्रा में खाद तथा उर्वरकों का प्रयोग ठीक समय पर किया है, क्या सिचाई का प्रबंध किसानों के साथ समुचित और बरावर रूप से व्यवस्थित रहा है, क्या कीड़ों और बीमारियों से बचाव का प्रबंध हुआ है और क्या बोये गये गन्ना के बीज उत्तम हैं और यदि संभव हो सके वे उन्नत है या नहीं इत्यादि। गत अनेक वर्षों से गन्ना सहकारी संघों की इन सभी वातों में रुचि होने के कारण इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये उन्होंने प्रगति की ओर पैर बढ़ाये, आदमियों को नियुक्त किया और अपना व्यय बढ़ाया। फिर भी सहकारी संघ स्वयं अधिकार प्राप्त संस्था नहीं है। इसीलिये, इसके कृषि अधिकारियों और क्षेत्र कार्य्यकर्त्ताओं की संस्था के अनुकूल ही यह संस्पर्शी ग्रामों में जहाँ

प्रमुख सदस्य अधिकारियों, क्षेत्र अधिकारी, तथा संचालक मंडल के सदस्यों से परामर्श लेते हैं और संस्था को उचित ढंग से चलाने की रीति पर अपने विचार व्यक्त करते हैं। वर्ग समितियों की सहायता अनेक प्रकार से प्राप्य हैं ; सदस्यों की कठिनाइयों की सूचना अधिकारियों को देने के लिये, वर्ग के सदस्यों को नये तरीके प्रयोग करने की प्रेरणा देने के लिये, सड़क इत्यादि को उचित पंक्तियों में डालने के कार्य्य में सदस्यों की सहायता लेने के लिये।

अच्छे तरीकों को अपनाने और हानि या असामाजिक रीतियों दोनों से बचने के लिये ऐसी संस्था की आवश्यकता है। उदाहरणार्थ, कुछ गन्ना सहकारिताओं के सामने आयी एक समस्या का कारण है सदस्यों द्वारा कूआँ से सिंचाई का अत्यधिक विस्तार। ऐसी अवस्थाओं में सदस्यों के अल्पकालिक हितों और दीर्घकालिक दृष्टिकोण से आवश्यक बातों के बीच विरोध हो सकता है। प्रत्येक कूआँ की क्षमता का विस्तृत माप, अतिविस्तार की आवश्यकता का सदस्यों को विश्वास दिलाना और अन्तिम विश्लेषण में, जहाँ थोड़े लोग विरोध करें वहाँ बलप्रयोग करने की आज्ञा देने के लिये प्रस्तुत होना, ऐसी परिस्थिति में यह सब करना आवश्यक है। लेकिन इन सबके लिये, जो संयोजन प्रयत्नों में संनिहित बातों से अधिक कुछ भी नहीं, प्रयास किया जा सकता है क्योंकि एक सुसंगत संस्था जो उत्साह भर सकता है, जिसमें विशिष्ठ ज्ञान और साधन है और पहले से ही व्यवस्थापित है, संमोदनों को कार्य्यान्वित कर सकता है।

इसीलिये, कृषि संयोजन में प्रथम आवश्यकता कृषि उत्पादकों को समन्वित तथा प्रयोजित रीति में संघटित करना है। इस प्रकार का एकमात्र संघटन युक्ति जो हमारे पास है वह है बहुर्दिक और संयुक्त सहकारी प्रणाली। वर्तमान सहकारी संघटन विन्यास में अनेक ऐसे अंश हैं जिनका संयोजन के दृष्टिकोण से महत्व है।

उदाहरणार्थ मैं सहकारी आकलन का सस्य ऋण रीति की चर्चा करूँगा। जब सस्य विशेष के उत्पादन के लिये ऋण दिया जाता है और जब यह विभिन्न सस्यों के क्षेत्रफलों से संबंधित होता है तब सहकारी आकलन संस्था इन सस्य प्रतिरूपों और विभिन्न सस्यों के क्षेत्रफल में अत्यन्त रुचि लेने लगता है। चूँकि प्रधानतः ऋण विशेष आदा के लिये दिया जाता है यह देखना चाहता है कि पर्याप्त मात्रा में और उत्तम प्रकार की आदाओं का प्रयोग हुआ है और चूँकि सस्यों के विक्रय से ऋण का शोध होता है, इसे विक्रय के उचित प्रबंध में भी

रुचि है। सहकारी आकलन प्रणाली के कार्य्य में जहाँ तक संभव हो सामग्री को वस्तु के रूप में देने की प्रथा और जिन किसानों ने सस्य विशेष को उगाने के लिये तृण लिया है उनको नामांकित व्यापार या अन्य सहकारी संस्थाओं द्वारा अपने उत्पादनों को बेचने का आदेश देने की प्रथा खूब प्रचलित है। यदि ऋण तथा सामग्री का प्रदाय, उपभोग की वस्तुओं सहित, सहकारिताओं के साथ हो और यदि उत्पादन का व्यापार तथा विधायन उनके हाथ में हो तब सम्पूर्ण सहकारी प्रणाली उन्नत बीज और उर्वरकों से लेकर उत्पादन के उपयुक्त विधायन और विधायित सामग्री को लाभ के साथ बेचने तक किसानों के कार्य्य-क्रमों पर दृष्टि रख सकते हैं। विकास योजनायें, संबंधित मध्यवर्ती तथा दीर्घकालिक धन व्यवस्था के साथ, समस्त सहकारी संस्था में इसी प्रकार सम्मिलित किये जा सकते हैं।

यह विचित्र बात है कि हमारी योजनाओं में विक्रय किये गये कृषि के अतिरेकों या उनपर नियंत्रण रखने की विधियों की बहुत थोड़ी चर्चा की गयी है। जबकि कृषि के संबंध में, संयोजन को समस्त कृषि उत्पादन बढ़ाने की चिन्ता होनी चाहिये, अकृष्य क्षेत्रों के संबंध में योजना विक्रय किये गये अतिरेक खाद्यान्नों और औद्योगिक कच्चे मालों की मात्रा में अधिक रुचि रखता है। कृषि उत्पादनों के निर्यात का संयोजन, या देश में उत्पन्न कच्चे माल को परि-वर्तित कर औद्योगिक सामग्रियों का उत्पादन, या नगर की जनसंख्या के भरण और स्फीति संभावनाओं को दबाने के लिये खाद्यान्न प्रदाय का संयोजन, सभी विक्रय किये जानेवाले अतिरेकों के ठीक आगणन और उनके बहाव पर नियंत्रण रखने की क्षमता पर निर्भर करता है। इस दृष्टिकोण से भी संयोजन में यह आवश्यक है कि कृषि उत्पादनों का विक्रय तथा विधायन सहकारी संस्थाओं द्वारा संघटित किये जायें। केवल इसी प्रकार कृषि उत्पादनों का प्रदाय और भंडार निरंतर ध्यान में रह सकता है। इस संबंध में विनियमित बाजारों पर जो महत्व दिया जाता है वह बहुत ही भ्रामक है। अनुभव ने सिद्ध कर दिया है कि विनियमित बाजार चाहे सिद्धान्त रूप से कितनी भी सावधानी से विनियमित हो, उनका वास्तविक प्रयोग, उस स्थान के अतिरिक्त जहाँ शक्तिशाली सहकारी संस्थायें काम करती हैं, बहुत थोड़ा है। संयोजन के लिये विक्रय का विनिमय उतना आवश्यक नहीं जितना सहकारी विक्रय तथा विधायन संस्थाओं के हाथों में कृषि उत्पादनों का एकत्रित होना है।

मेरे विचार से भारत में कृषि संयोजन प्रारंभ करने से पहले का यह एक प्रतिबंध है कि बिखरे हुए कृषि उत्पादक एक संयुक्त ,सहकारी प्रणाली में संघटित किये जायें जिससे उनके कार्य्यक्रम के प्रत्येक स्तर पर उनका विस्तार दिशा और दक्षता एक या दूसरे सहकारी प्रणाली द्वारा वोधगम्य हो। जब ऐसा होता है तभी, प्रथम, विभिन्न स्तरों पर उत्पादकों के कार्य्यक्रम के संबंध में यथेष्ठ सूचना मिल सकती है और दूसरे, उनको दक्षतापूर्वक प्रभावित किया जा सकता है। फिर भी जबतक इस शृंखला में एक भी कड़ी लुप्त है दक्षतापूर्वक संयोजन करना असंभव होगा। इसीलिये देश में सहकारी संस्थाओं का जाल विछाने के दूसरे कारणों के अतिरिक्त मैं तो कहूँगा कि कृषि संयोजन का दक्ष संयोजन संभव करने के लिये प्रारंभिक सीढ़ी रूप के में देश भर में सम्पूर्णतः संयुक्त उत्तरदायी सहकारी संस्था का अत्यन्त शीध्र निर्माण किया जाय।

सहकारी संरचना के निर्माण के पक्ष में तर्क देने की कदाचित् कोई आवश्यकता नहीं क्योंकि गत कुछ समय से इस विषय पर सामान्य रूप से सहमति मालूम होती है। फोर्ड फाउन्डेशन समूह ने, जिसने कुछ मास पूर्व अपना विवरण प्रस्तुत किया, बीच प्रदाय और उर्वरक वितरण को सहकारी संघों को दे देने की आवश्यकता और प्रदाय विधियों के उत्तरदायित्व का सामान्य हस्तान्तरण, कृषि विभाग से सहकारी विभाग को, कर देने पर ज़ोर दिया है, यह अन्तिम अभिस्तावना कृषि प्रशासन समिति द्वारा भी स्वतंत्र रूप से किया गया है। फोर्ड फाउन्डेशन समूह ने विधायन के संबंध में बल-पूर्वक लिखा है: "आज प्रमुख चावल उत्पन्न करने वाले क्षेत्रों में सहकारी-स्वामिक धान कूटने और चावल के मिल की सबसे अधिक आवश्यकता है। और समूह ने प्रस्ताव किया कि सहकारिताओं को मूल्य स्थिर करने के अभि-कर्ता की तरह प्रयोग कर सहकारी व्यापार और प्रदाय को शक्तिशाली बनाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त हाल के विवरण बताते हैं कि खाद्य तथा कृषि मंत्रालय ने सिद्धान्त रूप से फोर्ड फाउन्डेशन द्वारा किये गये अभिस्तावनों पर आधारित खाद्यान्न उत्पादन की वृद्धि के लिये अग्रणी कार्य्यक्रमों को स्वीकार कर लिया है। इस कार्य्यक्रम में उत्पादन संभावनाओं पर आधारित समुचित प्रक्षेत्र ऋण देना सम्मिलित मालूम होता है। यथेष्ठ उर्वरक, नाशिकीटमार, उन्नत बीज, उन्नत खेती के यंत्र और अन्य अनिवार्य उत्पादन आवश्यकतायें सभी शक्तिशाली बनाये गये सहकारी संस्थाओं द्वारा प्राप्य होंगे। संभवतः

कार्य्यक्रम में भाग लेने वाले किसानों में दो वर्ष पूर्व ही कम से कम मूल्य की घोषणा कर मूल्य की प्रेरणा देने का विचार रखा गया है। व्यापार व्यवस्था और सेवा, विशेषकर सहकारी, किसानों को अपने विक्रय अतिरेक के लिये बाजार का पूरा मूल्य दिला सकेगा। सहकारी विधायन का संगठन और प्रयोग जहाँ आवश्यक है सुविधाजनक बना देगा।

फिर भी यह एक ऐसा विषय है जिस पर केवल सैद्धान्तिक सहमति ही यथेष्ट नहीं। जिसकी आवश्यकता है वह है देश भर में शीघ्र काम करना। यदि सरकार सात जिलों में विशेष खाद्यान्नों के किसानों को विशेष रूप से संघटित और सहायता करना चाहती है तब कोई कारण नहीं कि उसी प्रकार का संघटन और सहायता दूसरों कोभी प्राप्य न हो। यदि संयोजन से सार्थक फलों की आशा है तब इसे सभी विभागों और क्षेत्रों में एक साथ विस्तृत किया जाना चाहिये। कृषि संयोजन की दृष्टि से मैं इस प्रसंग में दो बातों पर ज़ोर दूँगा। प्रथम, छोटे बिखरे इकाइयों का आवश्यक संघटन केवल सरकारी उपक्रमण तथा सहायता से ही हो सकता है। यह सार्वजनिक अनुभव है। द्वितीय, यद्यपि चरम लक्ष्य एक संयुक्त सहकारी प्रणाली होनी चाहिये, फिर भी समायोजन तथा काम चलाने के लिये संक्रमण स्तर पर पर्याप्त छूट होनी चाहिये। सम्पूर्ण रूप से अनुकलित सहकारी प्रणाली का निर्माण अनिवार्य रूप से समय लेगा और सभी क्षेत्रों में एक ही गति से प्रगति नहीं कर सकेगा। चूँकि संयोजित कार्य्यक्रम में भाग लेने के लिये किसानों को संघटित करने का हमारा तत्काल लक्ष्य है, इसीलिये अन्तरिम या उससे ढीले प्रकार के संस्थाओं का प्रतिस्थापन, जैसे सहकारी संस्था के लिये ऋण लेने वाले समूहों का किसानों का समाज अन्तरावधि को थोड़े समय के लिये मिटाने को बनाया जा सकता है। जबतक तत्काल कोई ऐसा कदम नहीं उठाया जाता जो यथासमय इसे सम्पूर्ण सहकारी कार्य्यक्रम में परिवर्तित करने के विरुद्ध हो, कोई हानि नहीं होगी। उच्चतर स्तरों पर राजकीय कार्य्यक्रम अधिक महत्व रखेंगी। उदाहरणार्थ मैं तो कहूँगा कि सभी यांत्रिक शक्तिचालित विधायन कारखानों को जो सभी प्रकार के सस्यों के संबंध में चलते हैं उनका राज्य-सहकारी प्रणाली में तत्काल निगमन कर दिया जाय। भविष्य के सभी कारखाने सहकारियों द्वारा चलाये जायें लेकिन तत्काल हाथ में लेने के लिये पहले उनको शासकी क्षेत्र में लेकर यथासमय सहकारी क्षेत्र में हस्तान्तरित कर देना चाहिये। तत्काल जो आवश्यक है वह है सर्वव्यापी कार्य्यक्रम और यह देखना कि सह-

कारिता के प्रकार के संबंध में थका देने वाली, अवास्तविक प्रतिवादें इस अतिपाती आवश्यकता को रोकते नहीं।

जड़ से ही कृषि संयोजन के लिये संघटन की समस्या के दो पक्ष हैं। पहला किसानों को संघटित करने का है जिससे वे संयोजन में भाग ले सकें। दूसरा है निम्नतर स्तर पर संयोजन विधायन का संघटन। अब मै संक्षेप में दूसरे पक्ष की चर्चा करूँगा। निम्नतर स्तर के संबंध में दो महत्वपूर्ण प्रश्न हैं: (१) विस्तार का क्षेत्र, (२) संयोजन अधिकारी का विन्यास। मेरे विचार से गांव को निम्नतर संयोजन इकाई मान लेना भूल होगी। निम्नतर स्तर पर भी संयोजन विधायन को बहु दिशाओं का ज्ञान होना चाहिये। विशेषकर, प्रदाय और विक्रय के विचारों में बल होना चाहिये। इसीलिये विक्रय क्षेत्र कहे जा सकने वाले क्षेत्र से छोटे इकाई को लेना अधिक ठीक दीखता है। साधारणतः इस निम्नतर क्षेत्र इकाई में कृषि अवस्थाओं को सापेक्षतया समरूप माना जा सकता है।

इससे अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न, कदाचित्, संयोजन अधिकारी का विन्यास है। इस संबंध में मुझे एक बात पर ज़ोर देना चाहिये। वह है कि इस विन्यास में उनकी सदस्यता स्वीकृत नहीं होनी चाहिये जो उन कार्य्यक्रमों में कार्य्यात्मक रूपसे संबंधित नहीं हैं जिसकी योजना बनायी जा रही है। क्योंकि, जब ऐसा नहीं होता है तब राजनीतिक तथा अन्य विचारों के प्रदेश के लिये द्वार खुला होता है जो संयोजन कार्य्य को वास्तविक लक्ष्य से दूर ले जाते हैं। यह सामान्य अनुभव की बात है कि जब अनेक व्यक्ति विचार करते हैं और उन कार्य्यक्रमों के प्रति निर्णय करते हैं जिनमें सभी एक विशेष दृष्टिकोण से अपनी रुचि रखते हैं तब बाहरी प्रभावों को लघुतर रखना संभव है।

निम्नतर स्तर पर संयोजन अधिकारी तीन अंशों से बने होने चाहियें। प्रथम, एक अंश जो उस क्षेत्र के स्थानीय स्वशासन संस्था का प्रतिनिधित्व करे। यह आवश्यक हैं क्योंकि यही संस्थायें हैं जो मुख्यतः स्थानीय समाजार्थिक उपरिव्यय प्रदान करेंगे जो संयोजन प्रयत्नों के लिये आवश्यक है। वे पाठ-शालाओं, सड़कों, स्थानीय उपकरों और शुल्कों, नगर प्रशासन और ग्रामीण धरों सहित प्रक्षेत्र संयोजन नियमों के उत्तरदायी होंगे। द्वितीय अंश, विशेषज्ञ सरकारी प्राद्यौगिक व्यक्ति के प्रतिनिधियों से बना होना चाहिये। तृतीय तथा मुख्य अंश, उस क्षेत्र विशेष के आर्थिक जीवन से प्रत्यक्ष रूप से संबंधित प्रत्येक प्रकार और स्तर के सहकारीताओं का प्रतिनिधित्व होना चाहिये।

मैं अनुमान करता हूँ कि इस समय पर प्रतिनिधित्व की गयी अभिरुचियाँ न केवल किसान होंगे वरन् वे सभी जैसे शिल्पी, यातायात अभिकर्ता तथा मजदूर भी उस सीमा तक जहाँ तक मजदूरों की मांगें भिन्न हैं और इस क्षेत्र में सहकारिता द्वारा संघटित हैं।

मैं अनुमान करता हूँ निम्नतर इकाई का संयोजन अधिकारी मुख्यतः अपने ही क्षेत्र के साधनों के विकास और उसी क्षेत्र के सभी आर्थिक इकाइयों के उत्पादन तथा दक्षता से संबंधित होंगे। अतीत के निष्पादन, वर्तमान कार्य्यक्रम तथा विभिन्न प्रतिनिहित संस्थाओं के कार्य्यक्रमों का भविष्य के प्रक्षेत्रों के आंकड़ों की चर्चा होगी और अनेक आर्थिक अभिकर्ताओं और इकाइयों के संकार्यों तथा अधिकारियों और स्थानीय स्व-प्रशासन अधिकारियों के कार्य्यक्रमों को इस क्षेत्र के सार्थक योजना में बांध देना मुख्य काम होगा। प्रत्येक गांव या प्रत्येक स्वतंत्र इकाई या अभिकर्ता की योजनायें और संकार्य उसके समस्त योजना से व्युत्पादित किये जायगे।

निम्नतर इकाई के ऊपर जिला को, जिला के ऊपर उस क्षेत्र को जो राज्य के भीतर एक अपेक्षाकृत समरूप आर्थिक भौगोलिक खण्ड होगा और स्वयं राज्य को मैं संयोजना का अधिविन्यास मानता हूँ। इस प्रत्येक स्तर पर सम्पूर्ण प्रवर्ती संयोजन संस्था का होना आवश्यक है। प्रत्येक स्तर पर संयोजन इकाई की बनावट निम्नतर इकाई के निर्दिष्ट बनावट के सिद्धान्तों के अनुकूल ही होगा। उच्चतर स्तरों पर केवल सरकारी भाग अधिक मात्रा में स्पष्ट होगा और, उदाहरणार्थ, अन्य अंश, जैसे संघटित उद्योग और वैयक्तिक वित्त, ऊपरी स्तरों पर और अधिक महत्वपूर्ण दीखेंगे। केवल यही आवश्यक नहीं कि संयोजन प्राधिकारी के इकाइयों के अंश संयोजित किये जाते हुए कार्य्यक्रमों से प्रकार्य दृष्टि से संबंधित हों वल्कि प्रत्येक संयोजन प्राधिकारी को वास्तविक कार्य और उपयुक्त अधिकार दिये जाने चाहियें। जब तक प्रत्येक प्रकृष्ट संस्था नीचे के संस्थाओं के लिये एक आवश्यक मात्रा में प्रक्रामण तथा व्यवस्थापन की स्वतंत्रता नहीं देता इस प्रकार के संस्थाओं के विस्तृत अवतानों का सृजन निरर्थक है। जब संधानीय सिद्धान्त के अनुसार वास्तविक रूप से काम किया जायगा तभी इस प्रकार की संस्था में बल आयेगा। संयोजन अधिकार का जड़ जिस मात्रा में वास्तविक होगा उसी मात्रा में उत्साह और स्वाभाविक कार्य्यों का सृजन होगा, यदि नहीं तब एक ऐसे निरर्थक विन्यास का उद्भव होगा जो केवल प्रगति का उपारोधन करता है।

दूसरे पक्ष की ओर मुड़ने से पहले मैं केन्द्र में कृषि संयोजन के संघटन की कुछ चर्चा करूँगा। कृषि क्षेत्र में केन्द्र का बहुत ही सीमित भाग है। इसे उपयुक्त व्यापार तथा मूल्य नीतियों की व्यवस्था करनी है, भूमि सुधार सहकारी संस्था इत्यादि के प्रसंग में इसे बृहत् उद्देश्यों और सामान्य सिद्धान्तों को बता देने के सिवा कुछ नहीं करना है और इसे विशेषकर आयात, प्रदाय का यथेष्ट बहाव और नियंत्रित वितरण संभालना है। यह इसके साधारण समन्वय करने वाले सर्वव्यापी कार्य्यभाग के अतिरिक्त है। यह स्पष्ट है कि केन्द्र इनके अधिकांश दृष्टान्तों में असफल रहा है। मूल्य नीति और उर्वरक प्रदाय की चर्चा मैं कर चुका हूँ। सहकारिता नीति के संबंध में केन्द्र द्वारा प्रदर्शित अत्याचारी और अनिश्चित व्यवहार के विचित्र समिश्रण ने केवल संभ्रम उत्पन्न कर प्रगति को रोक रखा है। यह विश्वास करने की बात है कि अधिक भागों में ये त्रुटियां केन्द्र के वर्तमान संयोजन संगठन के कारण ही हैं। कृषि संयोजन के दृष्टिकोण से देखने पर ऐसा लगता है जैसे योजना आयोग के कार्य्यक्रमों का अन्त कर देने का या कम से कम स्थगित कर देने और उसे मंत्रिमंडल की एक नीति समिति को सौंप देना ही श्रेयस्कर है। इसके दो कारण हैं। संयोजन का अभिकर्ता होने के संबंध से आयोग, ज्ञान का नहीं, केवल पुरानी प्रतिकूलताओं का प्रतिदान करता है। परन्तु इससे भी अधिक गंभीर है केन्द्रीय मंत्रिमंडल के कार्य्यक्रमों पर योजना आयोग का प्रभाव। व्यक्तिगत रूपसे मंत्रिगण और सम्पूर्ण मंत्रिमंडल स्पष्ट और संगत नीति न बना सकने का दोष योजना आयोग के संकार्यों पर डालते हैं। खाद्यान्न जांच समिति से पूर्व कृषि मंत्रालय द्वारा अपनियंत्रण इसका स्पष्ट साक्षी है, और कुछ ही दिन हुए कि पूर्व खाद्यमंत्री ने योजना आयोग और राष्ट्रीय विकास परिषद को, जो एक दूसरी नीति निर्माण करने वाली संस्था है जिसके ऊपर कोई उत्तरदायित्व नहीं, अपनी असफलताओं के लिये दोष दिया है। अब वह समय आ गया है जब जनता को यह मांग करनी चाहिये कि आर्थिक नीति सम्पूर्ण केन्द्रीय मंत्रिमंडल द्वारा सविचार, चैतन्य तथा स्पष्ट रूप से बनायी जाय और समय समय पर किसी एक मंत्री तथा एक अवधि विशेष में सभी मंत्रियों की घोषणायें एक प्रतिरूप तैय्यार करेंगी और मंत्रिमंडल की घोषित नीति से संगत होंगी। मुझे विश्वास है कि योजना आयोग के कार्य्यक्रमों को स्थगित करने से मंत्रिमंडल द्वारा इस दृष्टिकोण को स्वीकार कर लेने में सहायता मिलेगी।

कृषि संयोजन की उस आवश्यकता पर विचार जिसमें इस संसद के सदस्य रुचि रखते हैं यथा ज्ञान--सांख्यिकी तथा अन्य--मैंने अन्त के लिये उठा रखा है। इस ज्ञान का स्वरूप संयोजन विधि के जड़ से ही संबंधित होगा और ऊपर तक खींचा गया होगा। स्पष्टतः विस्तृत स्थानीय आंकड़े और क्षेत्र के आंकड़े ही आवश्यक आंकड़े हैं। गैर सरकारी सूत्रों से भी आंकड़ों को एकत्रित करना और प्रयोग करना होगा यद्यपि इसका विधायन और प्राद्यौगिक प्रयोग प्रधानतः सरकारी विशेषज्ञों का कर्त्तव्य होगा। आंकड़ों का संघटन भी उन इकाइयों के लिये होना पड़ेगा जिनका संयोजन में नये दृष्टिकोण का महत्व है। यह जानी हुई बात है कि आंकड़ों के संग्रहन और संतुलन की नीति तथा प्रशासन व्यवहार के विचार प्रभावित करते हैं। जब इस राज्य में कर अधीक्षण तथा निर्वसन संस्थायें निरंतर काम करती थी तब तालुका के अंगों के भी आंकड़े स्वतंत्र रूप से संतुलित और विश्लिष्ट किये जाते थे और पुनरीक्षण के अधीक्षण विवरण में आर्थिक भूगोल और आर्थिक इतिहास दोनों ही विषयों के क्षात्रों के लिये पर्याप्त मात्रामें उपयोगी वस्तुयें हैं। इसी प्रकार दुर्भिक्ष म् प्रशासन की अपेक्षाओं ने विशेष दुर्भिक्ष सांख्यिकी तथा दुर्भिक्ष एटलस का निर्माण कराया जिसका, मुझे ज्ञात है, अधिकारियों तथा क्षात्रों को पता भी नहीं है। मेरे विचार से प्रभावशाली कृषि संयोजन के लिये स्थानीय आर्थिक भूगोल की इसी पुरानी विधि को लौटाना आवश्यक है। इसके लिये निस्संदेह उपयुक्त कृषि सांख्यिकी मुख्य आधार बनेगा। जहाँ स्थानीय आंकड़े एकत्रित करने के लिये अभिकर्ता गण वर्तमान हैं इसके अन्तर्गत अधिकतर पुनःसंघटन और पुनः आकार देना तो है ही, इसके साथ ही जहाँ इनका अभाव है यह उपयुक्त संघटन की, और विशेषतः नैसर्गिक साधनों और उनके प्रयोग के संबंध में स्थानीय क्षेत्र के आंकड़ों को संग्रहित करने के अभिकर्ताओं के स्थापन की आवश्यकता बताता है।

कृषि संयोजन की कुछ ऐसी आवश्यकतायें हैं जो मेरे विचार से संबद्ध कृषि सांख्यिकी के संग्रहण की नयी विधि का सुझाव देती हैं। आजकल ऐसा लगेगा कि आदा की आवश्यकताओं और उनके प्रभाव की अधिकांश गणनायें थोड़े ही संपरीक्षात्मक प्रक्षेत्रों पर आधारित और कदाचित ये थोड़े भी, संदेह हो सकता है, परंपरागत मापदण्ड के अनुसार कुछ समय तक इकट्ठा किया गया हुआ मालूम होता है। प्रसार, प्रदर्शन इत्यादि के लिये यदि यथासमय प्रगतिशील किसानों की बड़ी संख्या सरकारी विशेषज्ञों के कार्य्यक्रम से

संबंधित हो जायें तब यह आंकड़ों के लिये उपयोगी स्त्रोत सिद्ध होगा। निस्संदेह यह सरकारी तथा गैर सरकारी अभिकर्ताओं के बीच वही गाढ़ी सहकारिता चाहेगा जो अन्य देशों में है। उदाहरणार्थ जापान में उत्पादन का वर्ग-निर्णय प्रधानतः सहकारिताओं के नियुक्त शिक्षित निर्णायकों द्वारा की जाती है।

आर्थिक क्षेत्र में भी विभिन्न प्रकार के सूत्रों से आंकड़ों का क्रमिक संग्रहण और संतुलन करने का प्रयास करना होगा। कृषि संयोजन की ऐसी अनेक केन्द्रीय समस्यायें हैं जिनके संबंध में आज भी उपलब्ध सुसंगत ज्ञान बहुत थोड़ा है। उदाहरणार्थ, यह स्वीकार किया जाता है कि भारतीय परिस्थितियों में कृषि उत्पादन और उनके मूल्यों के संबंध में हम प्रायः कुछ नहीं जानते। इसी प्रकार समस्त देश में मुख्य फसलों के विक्री किये गये अतिरेकों का दक्ष आगणन कर लेना संभव नहीं। संयोजन के लिये आपको न केवल प्रदेशानुसार वास्तविक अतिरेकों वरन् उनमें संभावित विचरण तथा उनके कारणों का ज्ञान होने की आवश्यकता है। इसके बाद है भूमि प्रयोग और फसलों के उगाने के प्रतिरूप। जब मैं ने यह जाना कि केन्द्र में एक समूह का सृजन हो रहा है जो देश में भूमि प्रयोग का अध्ययन करेगा तब मुझे मैं यह अपराध स्वीकार करूँगा, प्रभावित होने से अधिक विनोद हुआ। क्योंकि इन आंकड़ों का व्यवहार करते रहने के कारण मैं जानता हूँ कि उस स्तर पर उपयोगी अध्ययन के लिये वे कितने थोड़े हैं। अभी तो हमें प्रत्येक किसान के सस्य प्रतिरूपों के संबंध में निर्णय करने वाले नियंत्रणों, सीमाओं तथा प्रेरणाओं पर उचित अनुसंधान का प्रारंभ करना भी बाकी है। इन प्रयत्नों का बहुत अधिक भाग स्थिति अध्ययन के रूपमें होगा और आपको निस्संदेह उन आंकड़ों को व्यवहार करना होगा और काम चलाना होगा जिनको, आप में से जो शुद्धता के पक्षपाती हैं, हाथ लगाने से भी डरेंगे। लेकिन अन्ततोगत्वा, एक अनुविकसित देश में काम चलाना ही संयोजन की आत्मा है।

इन समस्याओं को किस प्रकार सर्वोत्तम रूपसे सुलझाया जाय इस संबंध में मेरी कोई क्षमता नहीं। मैं केवल उपभोगी हूँ और इसी दृष्टिकोण से मैंने कृषि संयोजन पर कुछ विचार आपके सामने प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है, और उनसे निकलने वाली सांख्यिकी आवश्यकताओं को संक्षिप्त में बताना चाहा है। फिर भी, एक विषय पर मैं निश्चित हूँ। स्वतंत्रता के पश्चात् इस देश की आर्थिक नीति का आधार केन्द्रीयकरण रहा है और सांख्यिकी के क्षेत्र में अत्यन्त आवश्यक रहा है उसे शक्तिशाली, समन्वित तथा नये प्रसंग

में प्राथमिक क्षेत्र अभिकर्ताओं के कामों का उपयुक्त संयोजन और सूत्रपात करना। यह निर्णय उस दृष्टिकोण पर आधारित है जिसे मैं अनेक वर्षों से धारण करता रहा हूँ और जिसे मैं इस देश में संयोजन के सूत्रपात के अवसर पर अनुवर्ती शब्दों में अंकित करना चाहता हूँ: "नीति के निर्माण के लिये आपको राष्ट्रीय समस्तों की उतनी आवश्यकता नहीं जितनी विशेष प्रदेशों और कार्य्यक्रम से संबंधित विस्तृत सूचनायें और आर्थिक व्यवस्था के विशेष अंगों के वास्तविक क्रियाओं की सामान्य रूप से स्पष्ट आभास की। जब आपने इस प्रकार की विशिष्ट सूचनायें पर्याप्त मात्रा में एकत्र कर ली हैं, तब वह राष्ट्रीय समस्त एक ऐसी वास्तविक सर्वछादी ढ़ांचा बनाने में सहायता कर सकता है जो राष्ट्रीय आय और लेखा को अर्थ भरा बना सकता है। लेकिन जबतक विस्तृत सूचनायें प्राप्त नहीं हैं तब तक राष्ट्रीय समस्त स्वयं नीति निर्माण या उसकी उपलक्षणाओं के विषय में निर्णय करने के लिये उपयोगी सिद्ध नहीं होंगे।"

स्थानीय विकेन्द्रीयित प्रयत्नों पर जोर देने पर पुनर्वचन के साथ और इस महत्वपूर्ण विषय पर अपने विचार व्यक्त करने का मुझे अवसर देने के लिये नवीकृत धन्यवाद के साथ मैं अपना वक्तव्य समाप्त करता हूँ।

वर्तुल समनुविधान

लेखक

एम० एन० दास

कृषि अनुसंधान सांख्यिकी संस्था, नई दिल्ली

वर्तुल समनुविधान नाम के एक नये समनुविधान की परिभाषा की गयी है और इष्टकाभ्यन्तर तथा अन्तराइष्टका विश्लेषणों की विधियाँ प्रतिपादित की गयी हैं। ऐसे समनुविधान किसी भी संख्या के उपचारों और अभ्यावृत्तियों के लिये प्राप्य हैं और उसके निर्माण में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती। उपचारों की संख्या कुछ भी क्यों न हो, तीन अभ्यावृत्तियों तक विशेष दृष्टान्तों के विश्लेषण के व्यन्जक निकाले गये हैं।

आवर्धित संमितिक तथा असंमितिक हत समनुविधान

लेखक

एस० एस० निरुला

कृषि अनुसंधान सांख्यिकी संस्था, नई दिल्ली

समाकुलन के विभिन्न विधियों के लिये अतिरिक्त उपचारों द्वारा आवर्धित संमितिक तथा असंमितिक हत समनुविधानों के यथार्थ विश्लेषण की सर्वसाधारण विधि और उनकी आपेक्षिक दक्षता की चर्चा की गयी है। यह भी दिखाया गया है कि इन समाकुलित समनुविधानों में सभी उपचारों के प्रभाव संबंधी सूचना प्राप्त की जा सकती है और यथार्थ विश्लेषण के स्वातंत्र्यांश के आवर्धन से विभ्रम विचरण की दक्षता भी बढ़ जाती है। आवर्धित समनुविधानों में, विशेषकर आवर्धित $२^{ड}$ समनुविधानों में, प्रतिचार वक्र का अन्वायोजन भी दिया गया है जब आवर्धन वक्र पर एक अतिरिक्त विन्दु देता है।

दो या अधिक पॉयसन समग्रों के मिश्रण से लिये गये अभिवेचित अधीक्षणों द्वारा प्राचलों का आगणन

लेखक

नौनिहाल सिंह

प्रतिरक्षा विज्ञान प्रयोगशाला, नई दिल्ली

पॉयसन बंटन का अनुसरण करनेवाले दो या अधिक उपसमग्रों द्वारा बने एक भिन्नांग समग्र के प्राचलों के आगणन की समस्या का उल्लेख इस लेख में किया गया है। आगणक प्राप्त करने के लिये महत्तम संभावना समीकार निकाले गये हैं। आगणकों के प्रमाप विभ्रम के आगणन के लिये सूचना व्यूह दिया गया है। निष्कर्शों के वास्तविक प्रयोग को चित्रित करने के लिये एक संख्यात्मक उदाहरण की भी चर्चा की गयी है।

लैटिन समायत का स्वतंत्र विभाजन (द -द, द)

लेखक

पी० एन्० भार्गव

नई दिल्ली

विभिन्न क्षेत्रों में सपरीक्षाओं के लिये लैटिन समायतों के स्वतंत्र भागों के उपयोगी होने की संभावना है। इसी लिये एक लैटिन समायत के दिये हुए स्वतंत्र विभाजन संबंधी लैटिन समायत के स्वतंत्र भाग के विश्लेषण की विधि निकालने के लिये अनुसंधान किया गया था। वर्तमान लेख में द तथा ($द^2$–द) कोशाओं के स्वतंत्र विभाजन संबंधी ($द^2$–द) कोशवाले लैटिन समायतों के एक स्वतंत्र भाग के विश्लेषण की एक विधि प्रस्तुत करने की चेष्टा की गयी है। वास्तव में इसका अर्थ है उस लैटिन समायत का विश्लेषण करना जिसके द कोश बिना प्रतिचार के इस प्रकार हों कि वे प्रत्येक स्तंभ तथा पंक्ति में एक-एक बंटे हों और प्रत्येक में भिन्न उपचार हों।

1117-59 Printed at the Bangalore Press, Bangalore City,
by T. K. Balakrishnan, Superintendent